UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186167
UNIVERSAL
LIBRARY

शिक्षा

स्वामी विवेकानन्द

अनुवादक—पण्डित द्वारकानाथ तिवारी,
बी.ए.,एल-एल.बी.

(द्वितीय संस्करण)

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
नागपुर, म. प्र.

प्रकाशक—
स्वामी भास्करेश्वरानन्द,
अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम,
नागपुर, म. प्र.

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्प २६ वाँ

(श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर द्वारा सर्वाधिकार स्वरक्षित)

मुद्रक—
प. वि. बेलवलकर,
हरिहरेश्वर प्रेस,
महाल, नागपुर.

मूल्य ॥=)

वक्तव्य

इस पुस्तक में (जिसका यह द्वितीय संस्करण है) स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा पर विधायक और स्फूर्तिप्रद विचारों को प्रस्तुत किया गया है। स्वामीजी का ओजपूर्ण और प्रगतिशील व्यक्तित्व था। उन्होंने अपने विचारों में यह प्रतिपादित किया है कि आज भारत को मानवता तथा चरित्र का निर्माण करनेवाली शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। उनके मत से सभी प्रकार की शिक्षा और संस्कृति का आधार धर्म होना चाहिये। उन्होंने अपने इस सिद्धान्त को अपनी कृतियों और व्याख्यानों में बराबर पुरस्सर किया है।

मद्रास-सरकार के शिक्षा मंत्री श्री टी. एस. अविनाशीलिंगम्‌जी ने स्वामीजी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का संग्रह कर उन्हें पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया है। यह पुस्तक उसी का हिन्दी रूपान्तर है। हम श्री अविनाशीलिंगम्‌जी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमें अपनी पुस्तक को हिन्दी में अनुवादित तथा प्रकाशित करने की अनुमति दी है।

इस पुस्तक का अनुवाद हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं. द्वारकानाथजी तिवारी, बी.ए.,एल-एल.बी., दुर्ग, म. प्र. ने करके दिया है। इस बहुमूल्य कार्य के लिये हम श्री द्वारकानाथजी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं। उनका यह अनुवाद भाषा तथा भाव दोनों की दृष्टि से सच्चा रहा है।

हमें आशा है कि जनता हमारे इस प्रकाशन से लाभान्वित होगी।

नागपुर,
ता. १-५-१९५१.

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

विषय				पृष्ठ
१. 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा की आवश्यकता				१
२. शिक्षा का तत्व	....	....		८
३. शिक्षा का एकमेव मार्ग	....	....		१३
४. शिक्षक और शिष्य	....	....		२०
५. चरित्रगठन के लिये शिक्षा	....	....		२५
६. धार्मिक शिक्षा	....	....		३२
७. स्त्री-शिक्षा	....	....		४३
८. जनसमूह की शिक्षा	....	....		४९

सेवाग्राम (वर्धा)

प्रिय अविनाशी,

सच पूछिये तो, स्वामी विवेकानन्द के लेखों के लिये किसी की प्रस्तावना की आवश्यकता नहीं है। उनका अक्षुण्ण प्रभाव अपने आप पड़े बिना नहीं रहता।

२२-७-४१

तुम्हारा—
'बापू'

"भारतीय शिक्षा की किसी समस्या को हल करने के लिये, प्रथम शिक्षक के नित्य प्रति के सामान्य कार्य का अनुभव होना आवश्यक है। और इसके लिये शिक्षार्थी की आँखों से संसार की ओर—चाहे वह क्षण भर के लिये ही क्यों न हो—देखते रहना, सबसे बड़ा और वांछनीय गुण है। शिक्षा-शास्त्र का प्रत्येक सूत्र इसी सत्य की घोषणा करता है। शिक्षार्थी की आकांक्षाओं के विपरीत शिक्षा देना, भलाई की अपेक्षा दुष्परिणामों का निश्चित रूप से आह्वान करना है।"

—स्वामी विवेकानन्द
(भगिनी निवेदिता के शब्दों में)

स्वामी विवेकानन्द

शिक्षा

१. 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा की आवश्यकता

शिक्षा का महत्व।

यूरोप के अनेक नगरों की यात्रा करते समय वहाँ के गरीब निवासियों तक के ऐश आराम और शिक्षा को देखकर मेरे मन में अपने देश के गरीबों की दशा का दृश्य खिंच जाता था और म आँसू बहाने लगता था। ऐसा अन्तर क्यों हुआ? उत्तर मिला कि शिक्षा ही इसका कारण है। शिक्षा और आत्मशक्ति के प्रति विश्वास के कारण उनका अन्तर्निहित ब्रह्मभाव जागृत होता है।

न्यूयार्क में मैं देखा करता था कि उपनिवेश-निवासी आयरिश लोग पददलित, क्षीणकाय, स्वदेश में सर्वस्वहीन, निर्धन और शून्यमस्तिष्क होते थे और उनकी एकमात्र सम्पत्ति एक डंडा और उसके सिरे पर लटकती हुई चीथड़ों की गठरी हुआ करती थी। वे डरते डरते कदम रखते थे और उनकी आँखें भयभीत रहा करती थीं। छः महीनों में ही भिन्न दृश्य दिखने लगा; वह मनुष्य अकड़कर

चलता है और उसकी वेषभूषा बदल जाती है। उसकी दृष्टि और चाल में अब भय का चिन्ह बिलकुल नहीं है। कारण क्या हुआ? अपने देश में वह आयरिश चारों ओर से तिरस्कृत था। सम्पूर्ण प्रकृति उसे एक स्वर से यह कहा करती थी, "बच्चू, तुमको कोई आशा नहीं है, तुम जन्म से गुलाम हो और सदा गुलाम ही रहोगे।" जन्मकाल से ऐसा सुनते सुनते बच्चू उसी पर विश्वास करने लगा और उसे ऐसा आत्मसम्भ्रम हो गया कि वह अत्यन्त नीच है। पर ज्योंही उसने अमेरिका में पैर रखा, सभी दिशाओं से उसे यह आवाज ज़ोर से सुनाई देने लगी कि, "बच्चू, तुम वैसे ही मनुष्य हो जैसे हम हैं। मनुष्य ने ही सब कुछ किया है; तुम्हारे और हमारे समान मनुष्य सब कुछ कर सकता है, हिम्मत रखो! बच्चू ने अपना सिर ऊँचा उठाया और देखा कि है तो ऐसा ही। मानो प्रकृति स्वयं यह कह रही हो, "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"—उठो, जागो और उद्देश्य की पूर्ति होते तक सतत प्रयत्न करना मत छोड़ो।

हमारी शिक्षा नकारात्मक (Negative) है।

आयरिश लोगों को उनके देश में मिलने वाली शिक्षा के समान हमारे यहाँ के बालकों को भी नकारात्मक शिक्षा दी जाती है। उसमें कुछ अच्छे गुण तो हैं, पर उसमें भयंकर दोष इतने अधिक हैं कि उनके कारण सभी अच्छे गुण दब जाते हैं। प्रथम तो वह 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा ही नहीं है। वह केवल

पूर्णतया नकारात्मक शिक्षा है। नकारात्मक शिक्षा या जो अभ्यास निषेध के आधार पर हो वह मृत्यु से भी अधिक अनिष्टकर है।

हमने केवल यही सीखा है कि हम कुछ नहीं हैं। शायद ही कभी हमें यह बताया जाता हो कि हमारे देश में कभी कोई महा-मानव पैदा हुए थे। हमें कोई यथार्थ अस्ति-मूलक (Positive) शिक्षा नहीं दी गई है। हम तो अपने हाथों और पैरों का भी उपयोग करना नहीं सीखे हैं। और इसका फल यही हुआ है कि पचास वर्ष की इस प्रकार की शिक्षा से एक भी मौलिक विचारवान पुरुष तैयार नहीं हो सका है। मौलिकतायुक्त प्रत्येक पुरुष जो सामने आया है वह अन्यत्र शिक्षा प्राप्त किया हुआ है, न कि इस देश में; या वह पुराने विद्यापीठों में अपनी शुद्धि करने के लिये प्रविष्ट हुआ है।

जानकारी (Information) ही शिक्षा नहीं है।

शिक्षा उस जानकारी के समुदाय का नाम नहीं है जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दिया गया है और वहाँ पड़े पड़े तुम्हारी सारी जिन्दगी भर बिना पचाये सड़ रहा है। हमें तो भावों या विचारों को ऐसे आत्मसात् कर लेना चाहिये कि जिससे जीवन निर्माण हो, मनुष्यत्व आवे और चरित्रगठन हो। यदि तुम केवल पाँच ही विचारों को अपना लिये हो और उन्हें अपने जीवन और चरित्र में उतार लिये हो, तो तुम्हारी शिक्षा सम्पूर्ण पुस्तकालय को कण्ठस्थ करने वाले मनुष्य की शिक्षा की अपेक्षा अधिक है। यदि शिक्षा और

जानकारी एक ही वस्तु होती तो पुस्तकालय संसार के सबसे बड़े सन्त और विश्वकोष ही ऋषि बन जाते!

विदेशी भाषा में दूसरे के विचारों को रट रट कर कण्ठस्थ करके अपने मस्तिष्क में उन्हें कूटकर और विश्वविद्यालयों की कुछ पदवियाँ प्राप्त करके, तुम अपने आप को शिक्षित समझते हो। क्या यही शिक्षा है? तुम्हारी शिक्षा का उद्देश्य क्या है? मुंशीगिरी मिलाना, या वकील हो जाना या अधिक से अधिक डिप्टी मैजिस्ट्रेट बन जाना (जो मुंशीगिरी का ही दूसरा रूप है)—इतना ही उद्देश्य है न? इससे तुमको या तुम्हारे देश को समष्टि रूप से क्या लाभ होगा? आँखें खोलकर देखो, तुम्हारे भारतवर्ष में (जो सदा अन्न का भाण्डार प्रसिद्ध रहा है) अन्न के लिये कैसी करुणात्मक पुकार उठ रही है! क्या तुम्हारी शिक्षा इस अभाव की पूर्ति करेगी? वह शिक्षा जो जनसमुदाय को जीवन-संग्राम के उपयुक्त नहीं बना सकती, जो उनकी चारित्र्यशक्ति का विकास नहीं कर सकती, जो उनमें भूतदया का भाव और सिंह के समान साहस पैदा नहीं कर सकती, क्या उसे भी हम 'शिक्षा' नाम दे सकते हैं?

हमें क्या चाहिये।

हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिये कि जिससे चरित्रगठन हो, मानसिक वीर्य बढ़े, बुद्धि का विकास हो और उससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। हमें आवश्यकता इस बात की है कि हम विदेशी अधिकार से स्वतंत्र रहकर अपने निजी ज्ञानभाण्डार की विभिन्न

शाखाओं का और उसके साथ ही आंग्ल भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन करें ; हमें यांत्रिक और अन्य ऐसी सभी शिक्षाओं की आवश्यकता है जिनसे उद्योगधंधों की वृद्धि और विकास हो, जिनके द्वारा मनुष्य नौकरी ढूँढ़ने के बदले अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त कमाई कर सके और आपत्काल के लिये संचय भी कर सके।

'मनुष्य' निर्माण-कारी शिक्षा।

सभी शिक्षाओं का, अभ्यासों का उद्देश्य 'मनुष्य' निर्माण ही हो। समस्त अभ्यासों का अन्तिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और आविष्कार संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है शिक्षा। हमारे देश को अब आवश्यकता है लौह बाहुओं और फौलादी स्नायुओं की, दुर्दमनीय प्रचण्ड इच्छाशक्ति की—जो सृष्टि के अन्तःस्थित भेदों और रहस्यों में प्रवेश कर सके और जो अपने उद्देश्य की पूर्ति प्रत्येक अवस्था में करने को तैयार हो—चाहे उसके लिये उसे समुद्र के अन्तस्तल में जाना पड़े या प्रत्यक्ष मृत्यु का सामना करना पड़े। हमें 'मनुष्य' निर्माण करने वाला धर्म चाहिये। हमें आवश्यकता है 'मनुष्य' बनाने वाले सिद्धान्तों की। हमें चाहिये ऐसी शिक्षा, जो हर तरह से हमें 'मनुष्य' बना सके।

---

२. शिक्षा का तत्व

मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान तो मनुष्य में अन्तर्निहित है; ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता; वह तो पूर्णतः उसके भीतर ही रहता है। जिसे हम कहते हैं कि मनुष्य 'जानता है' यथार्थ में मानसशास्त्रसंगत भाषा में उसका वह 'शोध करता है' या उसे 'अनावृत' या 'प्रकट' करता है। मनुष्य जिसे 'सीखता' है, यथार्थ में उसका वह, अनन्त ज्ञान की खानि अपनी आत्मा पर के परदे को हटाकर शोध करता है। हम कहते हैं कि न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का आविष्कार किया। क्या वह कहीं किसी कोने में इनकी राह देखते बैठा था? वह तो स्वयं इनके ही मन में था, समय ऐसा आया कि इन्होंने उसे जान पाया या ढूँढ़ निकाला। जो सब ज्ञान संसार को कभी भी प्राप्त हुआ है वह सब मन से ही प्रकट हुआ है। विश्व का अनंत ज्ञानभाण्डार स्वयं तुम्हारे मन में है। बाहरी संसार तो सुझाव मात्र है; वह तो एक प्रेरक है जो तुम्हें अपने ही मन का अध्ययन करने के लिये प्रेरित करता है। एक सेव के गिरने से न्यूटन को कुछ सूझ पड़ा और उसने अपने मन का अनुशीलन

ज्ञान मनुष्य में अन्तर्निहित ही है।

किया। उसने अपने मन में विचार की पुरानी कड़ियों को फिर से व्यवस्थित किया और उनमें एक नई कड़ी को देख पाया जिसे हम गुरुत्वाकर्षण का नियम कहते हैं। वह न तो सेव में था और न पृथ्वी के केन्द्रस्थ किसी वस्तु में।

ज्ञान की प्रक्रिया।

अतः सभी ज्ञान, चाहे वह लौकिक हो या आध्यात्मिक, मनुष्य के मन में है। बहुधा वह दिखाई नहीं पड़ता वरन् ढँका हुआ रहता है और जब उस पर का आवरण धीरे धीरे हटाया जाता है, तब हम कहते हैं, 'हम सीख रहे हैं' और ज्ञान की प्रगति इस अनावृत करने की प्रक्रिया से होती है। जिस मनुष्य पर से यह आवरण हटाया जा रहा है वह अधिक ज्ञानी मनुष्य है और जिस पर यह आवरण घने रूप में पड़ा हुआ है वह अज्ञानी है और जिस पर से यह आवरण पूरा हट गया है वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गया। चकमक पत्थर के टुकड़े में अग्नि के समान, ज्ञान मन में स्थित है और सुझाव ही वह घर्षण है जिसके द्वारा उसका बाह्य-आविष्कार साधित होता है। सभी ज्ञान और सभी शक्तियाँ अन्तःस्थित हैं। जिन्हें शक्तियाँ, प्रकृति के रहस्य या बल कहते हैं वे सब भीतर रहा करती हैं। मनुष्य की आत्मा से ही सभी ज्ञान का प्रकाश होता है। मनुष्य ज्ञान को प्रकट करता है। वह ज्ञान सनातन काल से उसके भीतर निवास करता रहा है, उसी को वह अपने भीतर देख पाता है।

शिक्षा

यथार्थ में कभी भी किसी को दूसरे ने शिक्षा नहीं दी। हममें से प्रत्येक को अपने आप से सीखना है। बाहरी शिक्षक केवल सुझाव देता है जिससे भीतरी शिक्षक समझने की ओर प्रेरित होता है। तब तो बातें हमारे ही अनुभव और विचार की शक्ति के द्वारा स्पष्टतर हो जायँगी और हम अपनी आत्मा में उनकी अनुभूति करेंगे। वह सम्पूर्ण विशाल वटवृक्ष जो कई एकड़ जमीन को आज घेरे हुए है वह उसी छोटे से बीज के भीतर था जो शायद सरसों के बीज के अष्टमांश से बड़ा नहीं था। वह सारा शक्ति-समुदाय वहाँ उसमें बद्ध था। हम जानते हैं कि विशाल बुद्धि एक छोटे से जीवाणुकोष (Protoplasmic Cell) के भीतर सिमटी हुई रहती है। यह विरोधात्मक भले ही प्रतीत हो, पर है यह सत्य। हममें से हर कोई एक जीवाणुकोष से उत्पन्न हुआ है। और हमारी सारी शक्तियाँ उसी के अन्तर्गत सिकुड़ी हुई थीं। तुम यह नहीं कह सकते कि वे खाद्य अन्न से उत्पन्न हुईं, क्योंकि यदि तुम अन्न की, पर्वत के समान भी ढेरी लगा दो तो उसमें से क्या कोई भी शक्ति प्रकट होगी? शक्ति तो वहाँ थी ही, भले ही वह अव्यक्त या प्रसुप्त हो, पर थी वहीं अवश्य। उसी तरह मनुष्य की आत्मा में अनन्त शक्ति अन्तर्निहित है, चाहे वह उसे जाने या न जाने। उसे जानना, उसका बोध होना ही उसका प्रकट होना है।

बालक स्वयं अपने को सिखाता है।

अन्तःस्थित दिव्य ज्योति बहुतेरे मनुष्यों में अवरुद्ध रहती है—वह लोहे की सन्दूक के भीतर के दीपक के समान है; भीतर से प्रकाश की कोई किरण बाहर नहीं आ सकती। पवित्रता और निःस्वार्थता के द्वारा क्रमशः हम उस धुंधला बनानेवाले माध्यम की सघनता को धीरे धीरे यहाँ तक हटाते हैं कि अन्त में वह कांच के समान पारदर्शक बन जाती है।

श्रीरामकृष्ण लोहे से कांच में परिवर्तित पेटी के समान थे जिनके भीतर से अन्तःस्थित प्रकाश ज्यों का त्यों दिख सकता था।

उसके स्वाभाविक विकास में सहायता करो।

आप किसी बालक को शिक्षा देने में उसी प्रकार असमर्थ हैं जैसे कि किसी पौधे को बढ़ाने में। पौधा अपनी प्रकृति का विकास आप ही कर लेता है। बालक भी अपने आप को शिक्षित बनाता है। पर आप उसे प्रगति के मार्ग में अग्रसर होने में सहायता दे सकते हैं। आप जो कर सकते हैं वह विधि रूप का नहीं, वरन् निषेध रूप का होगा। आप बाधाओं को हटा सकते हैं और ज्ञान अपने स्वाभाविक रूप से ही प्रकट हो जायगा। जमीन को कुछ पोली बना दीजिये ताकि उसमें से उगना आसान हो जाय। उसके चारों ओर घेरा बना दीजिये और देखते रहिये कि कोई उसे नष्ट न करने पावे। उस बीज से उगते हुए पौधे को आप उसकी शारीरिक बनावट के लिये—मिट्टी डालकर, पानी

और समुचित वायु का प्रबंध करके—आवश्यक सामग्री जुटा सकते हैं और बस यहीं आपका कार्य समाप्त हो जाता है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार जो भी आवश्यक हो ले लेगा। वह अपनी प्रकृति से ही सबको पचाकर बढ़ेगा। वही हाल बालक की शिक्षा का है। बालक स्वयं शिक्षा प्राप्त कर लेता है। शिक्षक ऐसा समझकर कि वह शिक्षा दे रहा है, सब कार्य बिगाड़ डालता है। मनुष्य के अन्तर में सभी ज्ञान अवस्थित है और उसे केवल जागृति की आवश्यकता है और उतना ही शिक्षक का कार्य है। हमें बालकों के लिए केवल इतना ही करना है कि वे अपने हाथ, पैर, कान और आँखों के उचित उपयोग करना सीखें।

स्वतंत्र अवसर।

जैसे किसी आदमी को अपने गधे को घोड़ा बनाने के लिये असह्य मार मारने की सलाह दी गई थी, जिससे कि अन्त में गधा ही मर गया, हमारे बालकों को उसी रीति से शिक्षित बनाने की प्रणाली का अन्त कर देना चाहिये। माता-पिता के अनुचित दबाव के कारण हमारे बालकों को विकास का स्वतंत्र अवसर प्राप्त नहीं होता। हर किसी में ऐसी असंख्य प्रवृत्तियाँ रहा करती हैं जिनके विकास के लिये समुचित क्षेत्र की आवश्यकता होती है। सुधार के लिये बलात् उद्योग करने का परिणाम बहुधा उल्टा ही होता है। यदि तुम किसी को सिंह बनने न दोगे, तो वह सियार ही बनेगा।

हमें क्रियात्मक भावनाएँ सामने रखनी चाहिये। निषेधात्मक विचार मनुष्यों को दुर्बल बनाते हैं। बहुधा देखने में यही आता है कि जहाँ माता-पिता पढ़ने-लिखने के लिये अपने बालकों के सदा पीछे लगे रहते हैं और कहा करते हैं कि तुम कभी कुछ नहीं सीख सकते, गधे बने रहोगे—तो यथार्थ में बालक वैसे ही बन जाते हैं। यदि आप उनसे सहानुभूति की बातें करें और उत्साह देवें, तो समय पाकर उनकी उन्नति होना निश्चित है। अगर आप उनके सामने क्रियात्मक भावनाएँ रखें तो वे सच्चे मनुष्य बनकर अपने पैरों पर खड़े होना सीख जायँगे। भाषा और साहित्य में, काव्य और कला में, हरएक विषय में मनुष्यों को उनके विचार और कार्य में अशुद्धियाँ न बताकर उनको सुचारु रूप से करने का मार्ग दिखाना श्रेयस्कर है। विद्यार्थी की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा में परिवर्तन होना चाहिये। व्यतीत जीवन का प्रभाव हमारी प्रवृत्तियों पर पड़ा है और इसीलिये विद्यार्थी को उसकी प्रकृति के अनुसार मार्ग दिखाना चाहिये। जो जहाँ पर है, उसकी उन्नति वहीं से आगे की ओर करनी चाहिये। हमने देखा है कि, जिनको हम निकम्मा समझते थे, उनको भी श्रीरामकृष्ण देव ने किस प्रकार उत्साहित किया और उनके जीवन का प्रवाह ही बिलकुल बदल दिया। उन्होंने किसी भी मनुष्य की विशेष प्रवृत्तियों को कभी भी नष्ट नहीं किया। उन्होंने अत्यन्त पतित मनुष्यों को भी आशा

क्रियात्मक भावनाएँ।

और उत्साहपूर्ण वचनों द्वारा उन्नत बना दिया।

स्वतंत्रता-उन्नति की पहिली सामग्री।

स्वतंत्रता उन्नति की प्रथम सामग्री है। अगर आप यह कहने का दुःसाहस करें कि "मैं इस स्त्री या बालक के उद्धार का उपाय करूँगा' तो यह गलत है, हजार बार गलत है। दूर हट जाओ। वे अपनी समस्याओं को स्वयं हल कर लेंगे। तुम सर्वज्ञता का अभिमान करने वाले होते कौन हो? तुममें ऐसे दुःसाहस का विचार कैसे आया कि ईश्वर पर भी तुम्हारी प्रभुता है? क्या तुम यह नहीं जानते कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर की आत्मा है? हरएक की ओर ईश्वर ही समझ कर देखो। तुम केवल सेवा ही कर सकते हो। ईश्वर के बच्चों की सेवा करो—यदि तुम्हें यह सौभाग्य प्राप्त है। यदि ईश्वर ने यह मंजूर किया कि तुम उसके किसी बच्चे की कुछ सहायता कर सकते हो, तो तुम धन्य हो कि तुम्हें वह सौभाग्य प्राप्त हुआ और दूसरे उससे वंचित रहे। उस कार्य को पूजा की भावना से करो।

---

३. शिक्षा का एकमेव मार्ग

ज्ञान की प्राप्ति के लिये केवल एक ही मार्ग है और वह है 'एकाग्रता'। शिक्षा का सम्पूर्ण सार 'मन की एकाग्रता' है। ज्ञान की प्राप्ति के लिये अत्यन्त निम्न श्रेणी के मनुष्य से लेकर उच्चतम योगी तक को उसी एक मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है। रासायनिक अपनी प्रयोगशाला में अपने मन की सारी शक्तियों को एकाग्र करके एक ही केन्द्र में स्थिर करता है और तत्वों (Elements) पर प्रक्षेप करता है—तब तो तत्वों का विश्लेषण होकर ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। ज्योतिषी अपने मन की शक्तियाँ एकाग्र करके एक ही केन्द्र में लाता है और दूरदर्शी यन्त्र के द्वारा उन्हें अपने लक्ष्यों की ओर फेंकता है जिससे कि तारागण और ग्रहसमुदाय सामने चले आते हैं और अपना रहस्य उसके पास प्रकट कर देते हैं। इसी प्रकार हरएक विषय में हुआ करता है; अध्यापक को अपने शिक्षण-कार्य में, विद्यार्थी को अपनी पुस्तकों के अध्ययन में और ज्ञान के लिये प्रयत्न करने वाले प्रत्येक मनुष्य को ऐसा ही होता है।

उसकी शक्ति।

एकाग्रता की शक्ति जितनी अधिक होगी, ज्ञान की प्राप्ति भी उतनी ही अधिक होगी। अत्यन्त नीच चर्मकार भी यदि अधिक एकाग्रचित्त होगा तो जूता अधिक अच्छा साफ करेगा। रसोइया एकाग्रचित्त होने से अधिक अच्छा भोजन पकायेगा। पैसा कमाने में या ईश्वर की आराधना करने में या और भी किसी कार्य करने में जितनी ही अधिक एकाग्रता होगी, वह कार्य उतना ही अधिक अच्छा सम्पन्न होगा। यही एक पुकार है, यही एक आघात है जो प्रकृति के द्वारों को खुला कर देता है और ज्ञानरूपी प्रकाश को बाहर फैलाता है।

मात्रा का भेद।

नब्बे प्रतिशत विचारशक्ति को साधारण मनुष्य व्यर्थ खो देता है और इसी कारण वह सदा बड़ी बड़ी भूलें किया करता है। शिक्षित मनुष्य का मन कभी भूल नहीं करता। मनुष्यों और पशुओं में मुख्य भेद केवल चित्त की एकाग्रता की शक्ति का तारतम्य ही है। पशु में एकाग्रता की शक्ति बहुत कम होती है। जो पशुओं को सिखाने का काम किये हैं, वे इस कठिनाई का अनुभव करते हैं कि पशु को जो कुछ सिखाया जाता है, उसे वह सदा भूल जाया करता है। पशु अपना मन अधिक समय तक किसी बात पर स्थिर नहीं रख सकता। इसी बात का अन्तर तो मनुष्य और पशुओं में है। दो मनुष्यों में भी उनकी एकाग्रता की शक्ति के अन्तर का ही तो भेद रहता है। अत्यन्त

नीच मनुष्य की उच्चतम पुरुष के साथ तुलना कीजिये। उन दोनों में एकाग्रता की मात्रा का भेद पाया जायगा।

कार्य की किसी भी दिशा में सारी सफलता इसीका परिणाम है।

फल।

कला, संगीत आदि में अत्युच्च प्रवीणता इसी एकाग्रता का फल है। जब मन एकाग्र रहता है और अपनी ही ओर मुड़ता है तब हमारे भीतर रहने वाले सब हमारे नौकर बन जाते हैं, मालिक नहीं रहते। यूनानी लोग बाह्य संसार पर अपने मन को एकाग्र किये थे और इसी के परिणाम-स्वरूप कला, साहित्य आदि में उन्हें पूर्णता प्राप्त हुई। हिन्दू लोगों ने अन्तरस्थ संसार में, आत्मा के अदृष्ट प्रदेश में अपने चित्त को एकाग्र करके योगशास्त्र की उन्नति की। विश्व अपना रहस्य खोल देने को तैयार है, केवल हमें यही जानना है कि इसके लिये किस तरह दरवाजा खटखटाया जाय—आवश्यक आघात कैसे पहुँचाया जाय; खटखटाने की शक्ति और दृढ़ता एकाग्रता से प्राप्त होती है।

ज्ञान के खजाने की एकमात्र कुंजी एकाग्रता की शक्ति है।

ज्ञान की एकमात्र कुंजी।

हमारे शरीर की वर्तमान अवस्था में हम इतने विक्षिप्तचित्त हैं कि मन अपनी शक्तियों को सैकड़ों चीज़ों में नष्ट कर रहा है। ज्योंही मैं अपने विचारों को एकत्र करके ज्ञान की एक वस्तु पर अपने मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करता हूँ, त्योंही मन में सहस्रों अवांछित

भावनाएँ दौड़ जाती हैं, मन में सहस्रों विचार दौड़ पड़ते हैं और उसे क्षुब्ध कर देते हैं। इसे किस प्रकार रोकना और मन को वश में लाना यही सब राजयोग के अभ्यास का विषय है। ध्यान का अभ्यास करने से मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है।

मुझे तो शिक्षा का यथार्थ सार मन की एकाग्रता ही प्रतीत होता है—न कि ज्ञातव्य विषयों का संग्रह। यदि मुझे अपनी शिक्षा फिर से प्राप्त करने का अवसर मिले तो मैं विषयों का अध्ययन नहीं करूँगा। मैं एकाग्रता की और अलग होने की शक्तियों को बढाऊँगा और तब तो साधन या यंत्र की पूर्णता प्राप्त हो जाने पर इच्छानुसार विषयों का संग्रह कर लूँगा।

एकाग्रता के लिये ब्रह्मचर्य की आवश्यकता।

बारह वर्ष की अवधि भर अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को शक्ति प्राप्त हो जाती है। पूर्ण ब्रह्मचर्य से प्रबल बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न होती है। वासनाओं को वश में कर लेने से उत्कृष्ट फल प्राप्त होते हैं। काम-शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में परिणत करो। जितना ही बल इस शक्ति में होगा उतना ही अधिक कार्य उससे हो सकेगा। जल का शक्तिशाली प्रवाह ही खानि खोदने के जल-यंत्र को चला सकता है। इसी ब्रह्मचर्य के अभाव के कारण हमारे देश में प्रत्येक वस्तु नष्टप्राय हो रही है। कड़े ब्रह्मचर्य के पालन से सम्पूर्ण विद्या अल्पकाल में अवगत की जा सकती है; एक ही बार सुन लेने या जान लेने पर

सदा स्मरण रखने की शक्ति आ जाती है। ब्रह्मचारी के मस्तिष्क में प्रबल कार्यशक्ति और अमोघ इच्छाशक्ति हुआ करती है। पावित्र्य के बिना आध्यात्मिक शक्ति ठहर नहीं सकती। ब्रह्मचर्य द्वारा मानव जाति पर अद्भुत प्रभुता प्राप्त होती है। आध्यात्मिक नेतागण अखण्ड ब्रह्मचारी थे और इसी से उन्हें शक्ति प्राप्त थी।

प्रत्येक बालक से पूर्ण ब्रह्मचर्य का अभ्यास कराना चाहिये। तभी उसमें श्रद्धा और विश्वास की उत्पत्ति होगी। सदा और सर्वथा, मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र रहना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। अपवित्र कल्पना अपवित्र कार्य के समान ही अनिष्टकर है। ब्रह्मचारी को विचार, वाणी और कार्य सभी में शुद्ध रहना चाहिये।

श्रद्धा ही उन्नति का मूल है।

सच्ची आत्मश्रद्धा की भावना हममें पुनः लानी है। स्वयं अपने में विश्वास की जागृति फिर से होनी चाहिये। केवल तभी हमारे देश के सामने की सभी समस्याओं का हम स्वयं हल कर सकेंगे। इसी श्रद्धा की हममें कमी है। एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में इसी श्रद्धा का तो अन्तर है और किसी वस्तु का नहीं। यही श्रद्धा तो एक मनुष्य को उच्च और दूसरे को निर्बल और नीच बनाती है। मेरे गुरुदेव कहा करते थे कि जो अपने को निर्बल समझता है, वह निर्बल हो जाता है, यह बात सच है। इस श्रद्धा का तुममें प्रवेश होना चाहिये। जो कुछ भी भौतिक शक्ति का प्रभाव तुम पाश्चात्यों में देखते हो वह इसी श्रद्धा का परिणाम है, कारण कि उन्हें अपनी

स्नायुशक्तियों में विश्वास है; और यदि तुम आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास रखो तो परिणाम और भी कितना अधिक होगा।

मनुष्य जो सोचता है, वही बन जाता है।

मेरा नम्र निवेदन है कि आप इस एक बात को समझ लें कि जो मनुष्य दिन रात यही सोचता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, उससे भला क्या काम हो सकता है? यदि कोई मनुष्य दिन रात यही सोचता है मैं दीन हूँ, नाचीज़ हूँ तो वह सचमुच नाचीज़ बन जाता है। अगर तुम सोचो कि मैं कुछ हूँ, मैं कुछ हूँ तो सचमुच तुम वैसे ही हो जाओगे। यही महान् सत्य है जिसका तुम्हें स्मरण रहना चाहिये। हम उस सर्वशक्तिमान के बालक हैं—उस अनन्त दैवी अग्नि की चिनगारियाँ हैं—हम नाचीज़ कैसे हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं, सब कुछ करने को तैयार हैं और सब कुछ कर सकते हैं। यही आत्मश्रद्धा हमारे पूर्वजों में थी; यही आत्मविश्वास उन्हें सभ्यता की दौड़ में अग्रसर होने के लिये प्रेरक शक्ति का काम देता था। अगर अवनति हुई है, अगर कोई दोष आ गया है तो तुम्हें पता लगेगा—इस अवनति का उसी दिन प्रारम्भ हुआ जब कि हम लोग अपनी इस आत्मश्रद्धा को खो बैठे।

इस श्रद्धा या सच्चे विकास के सिद्धान्त का प्रचार करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। मैं इस बात को दुबारा कहता हूँ कि यही विश्वास मानवता का अत्यन्त शक्तिशाली अंग है। प्रथम तो अपने आप में श्रद्धा रखो। यह जाने रहो कि एक चाहे छोटा सा बुद्बुद् हो

और दूसरा पर्वत के समान ऊँची तरंग हो, पर बुद्बुद् और तरंग दोनों के पृष्ठ-भाग में अनन्त महासागर है। वही अनन्त महासागर मेरे और तुम्हारे पृष्ठ-भाग में है। जीवन का, शक्ति का और आध्यात्मिकता का वही अनन्त महासागर मेरा है जो तुम्हारा है। इसी कारण, मेरे भाइयो! इस प्राणरक्षक, महान् उदार विशाल सिद्धान्त की शिक्षा अपने बालकों को उनके जन्मकाल से ही दो।

---

४. शिक्षक और शिष्य

मेरे विचार के अनुसार शिक्षा का अर्थ है—'गुरुगृह-वास' शिक्षक अर्थात् गुरु के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती। जिनका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समान हो ऐसे व्यक्ति (गुरु) के सहवास में शिष्य को बाल्यावस्था के आरम्भ से ही रहना चाहिये जिससे कि उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे। हमारे देश में ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरुषों द्वारा ही होता रहा है।

शिक्षक के व्यक्तिगत-जीवन का महत्व।

ज्ञानदान का भार पुनः त्यागियों के कंधे पर पड़ना चाहिये।

भारतवर्ष की पुरानी शिक्षाप्रणाली वर्तमान प्रणाली से बिलकुल भिन्न थी। विद्यार्थियों को शुल्क देना नहीं पड़ता था। ऐसी धारणा थी कि ज्ञान इतना पवित्र है कि उसे किसी मनुष्य को बेचना नहीं चाहिये। ज्ञान का दान मुक्तहस्त होकर बिना कोई दाम लिये करना चाहिये। शिक्षकगण विद्यार्थियों को उनसे शुल्क लिये बिना ही अपने

शिक्षा की प्राचीन प्रथा।

पास रखते थे। इतना ही नहीं, बहुतेरे गुरु तो अपने शिष्यों को अन्न और वस्त्र भी देते थे। इन शिक्षकों के निर्वाह के लिये धनी लोग उन्हें दान दिया करते थे, और शिक्षक लोग अपने शिष्यों का पालनपोषण उसी से करते थे। पुराने जमाने का शिष्य गुरु के आश्रम को 'समित्पाणि' होकर (हाथ में समिधा लेकर) जाया करता था और गुरु उसकी योग्यता का निश्चय करने के पश्चात् उसे कटिप्रदेश में मुंज घास की तिहरी रस्सी (मेखला) बाँधकर—जो शरीर, वाणी और मन को वश में रखने की प्रतिज्ञा का चिह्न-रूप था—उस शिष्य को वेदों का पाठ पढ़ाया करते थे।

शिष्यों के गुण।

शिष्य और गुरु दोनों के लिये कुछ आवश्यक नियम हैं। शिष्यों के लिये आवश्यकता है शुद्धता, ज्ञान की सच्ची पिपासा और लगन के साथ परिश्रम की। विचार, वाणी और कार्य में पवित्रता की नितान्त आवश्यकता है। ज्ञान-पिपासा के सम्बन्ध में पुराना नियम यह है कि जो जो इच्छा करो वही सब प्राप्त होता है। जिस विषय पर हम अपना चित्त जमाते हैं उसके सिवाय कोई अन्य विषय हमें प्राप्त नहीं हो सकता। सतत प्रयत्न, सतत युद्ध और अपनी निम्नतर प्रकृति का निरन्तर दमन चलते ही रहना चाहिये जब तक कि उच्चतम भावों की आवश्यकता का प्रत्यक्ष अनुभव न हो और विजय प्राप्त न हो। जो विद्यार्थी इस प्रकार के धैर्य और लगन की भावना के साथ चलता है उसकी अन्त में सफलता-प्राप्ति निश्चित है।

शिक्षक के तीन विशिष्ट गुण।

गुरु के सम्बन्ध में हमें यह देखना चाहिये कि उन्हें शास्त्रों के रहस्य का ज्ञान है। सारा संसार बाइबिल, वेद और कुरान पढ़ता है, पर वह तो केवल शब्द, वाक्यविन्यास; शब्दसाधन, शब्दशास्त्र—धर्म की नीरस अस्थियाँ मात्र हैं। जो गुरु शब्दों का अतिरिक्त ऊहापोह करता है और अपने मन को शब्दों की शक्ति के द्वारा भटकने देता है, वह रहस्य को खो बैठता है। शास्त्रों के मर्म या रहस्य का ज्ञान ही यथार्थ में गुरु बनाता है।

गुरु के लिये द्वितीय आवश्यक वस्तु है निष्पाप होना। बहुधा यही प्रश्न किया जाता है—"गुरु के चरित्र और व्यक्तित्व की ओर क्यों देखना चाहिये?" यह ठीक नहीं है। अपने लिये सत्य की प्राप्ति करने या दूसरों को उसे सिखाने का अपरिहार्य आधार तो हृदय और आत्मा की शुद्धता ही है। गुरु पूर्णतः शुद्ध हो। उसी से उसके शब्दों की महिमा है। गुरु का कार्य है यथार्थ में शिष्य में किसी विशेष वस्तु का संचार करना, न कि केवल शिष्य की वर्तमान बुद्धि या अन्य शक्तियों को ही गति देना। कोई यथार्थ अनुभव योग्य प्रभावरूप वस्तु गुरु से निकलकर शिष्य में संचारित होती है। इसी कारण गुरु को शुद्ध होना चाहिये।

तीसरी आवश्यक बात है उद्देश्य के सम्बन्ध में। गुरु अपने किसी अन्तिम स्वार्थ के लिये (धन, नाम या कीर्ति की लालसा से) न पढ़ावे। वह अपना कार्य केवल प्रेम से, मानव जाति के प्रति

शुद्ध प्रेम के भाव से ही करे। प्रेम ही आध्यात्मिक शक्ति को हस्तान्तरित करने का एक मात्र माध्यम है। स्वार्थमय उद्देश से—धन या नाम की लालसा से—उस माध्यम का तत्काल नाश हो जाता है।

गुरु पर विश्वास।

गुरु के साथ हमारा सम्बन्ध उसी तरह का है जैसे पूर्वज के साथ उसके वंशज का। गुरु के प्रति श्रद्धा, विनय, नम्रता और आदर के भाव हमारे अन्तःकरण में रहे बिना हमारी कोई उन्नति नहीं हो सकती। जिन देशों में इस प्रकार का सम्बन्ध गुरु के साथ नहीं रखा गया है, वहाँ गुरु केवल व्याख्यानदाता बन जाता है; गुरु अपने पाँच रुपये पाने की प्रतीक्षा करता है और शिष्य अपने मस्तिष्क में गुरु के शब्दों को ठूँस लेने की ही आशा करता है—तदुपरान्त गुरु और शिष्य दोनों ही अपनी अपनी अलग राह पकड़कर चले जाते हैं। परन्तु व्यक्तित्व में अत्यधिक श्रद्धा रखने से दुर्बलता आने की सम्भावना होती है और मूर्तिपूजा की ओर प्रवृत्ति होने लगती है। अपने गुरु की ईश्वर के समान पूजा करो, पर उनकी आज्ञा का पालन अन्धे के समान मत करो। प्रेम तो उन पर पूर्ण रूप से करो, परन्तु स्वयं भी स्वतंत्र रूप से विचार करो।

शिष्य के प्रति सहानुभूति।

गुरु को शिष्य की प्रवृत्ति में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को लगा देना चाहिये। सच्ची सहानुभूति के बिना हम अच्छी शिक्षा कभी नहीं दे सकते। किसी मनुष्य की श्रद्धा में विक्षेप नहीं करना चाहिये। अगर तुममें शक्ति है तो उसे कोई उससे अच्छी वस्तु दो, पर उसके पास

जो है उसका नाश मत करो। सच्चा गुरु वह है जो क्षण भर में अपने आप को मानो सहस्र पुरुषों के रूप में परिवर्तित कर सकता है। सच्चा गुरु वह है जो अपने को तुरन्त शिष्य की सतह तक नीचे ला सकता है और अपनी आत्मा को शिष्य की आत्मा में प्रविष्ट कर सकता है, और शिष्य के मन द्वारा देख और समझ सकता है। ऐसा ही गुरु यथार्थ में शिक्षा दे सकता है और दूसरा कोई ऐसा नहीं कर सकता।

---

५. चरित्रगठन के लिये शिक्षा

किसी मनुष्य का चारित्र्य उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का समुच्चय है, उसके मन के समस्त झुकावों का योग है। सुख और दुःख जैसे जैसे उसकी आत्मा में हुआ करते हैं, उनके भिन्न भिन्न चित्र आत्मा में अंकित होते हैं। उन सब अनुभवों के समुच्चय का फल मनुष्य का चारित्र्य या आचरण कहाता है। हम वही हैं जो हमारे विचारों ने हमें बनाया है। प्रत्येक विचार हमारे शरीर पर लोहे के टुकड़े पर हथौड़े की हलकी आघात के समान है और उसी में से हम जो बनना चाहते हैं बनते जाते हैं। वाणी तो गौण है। विचार सजीव होते हैं। उनकी दौड़ बहुत दूर तक हुआ करती है। अतः तुम अपने विचारों के सम्बन्ध में सावधान रहो।

विचारशक्ति का महत्व।

भलाई और बुराई दोनों का चरित्रगठन में समान भाग होता है और कभी कभी तो सुख की अपेक्षा दुःख ही बड़ा शिक्षक होता है। संसार के महान् सच्चरित्र पुरुषों के विषय में अनुशीलन करने के पश्चात् हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि अधिकतर यही दिखाई

सुख और दुःख का स्थान।

देता है कि सुख की अपेक्षा दुःख से अधिक शिक्षा प्राप्त हुई, धन की अपेक्षा गरीब ने अधिक सिखाया और स्तुति की अपेक्षा आघातों ने आन्तरिक अग्नि को सामने लाया। विलास की गोद में पलकर, गुलाब की शय्या पर सोते हुए और कभी भी बिना एक बूँद आँसू बहाये किसने महानता पाई है? जब हृदय में दारुण कष्ट का प्रादुर्भाव होता है, जब दुःख की आँधी चारों ओर उमड़ पड़ती है, और जब ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकाश का सदा के लिये लोप हो जायगा, जब आशा और साहस प्रायः विदा हो जाते हैं, तभी तो इस भयंकर आध्यात्मिक तूफ़ान में से आन्तरिक ज्योति की झाँकी दिखाई देती है।

कर्म का परिणाम।

मन को यदि झील की उपमा दी जाय तो प्रत्येक भँवर, प्रत्येक तरंग जो मन में उठती है, वह जब दब जाती है तो भी पूर्णतः मर नहीं जाती वरन् अपना निशान छोड़ जाती है और भविष्य में यह सम्भावना रहती है कि वह निशान पुनः प्रकट हो। हमारा किया हुआ प्रत्येक कार्य, शरीर का प्रत्येक संचालन, हमारा सोचा हुआ प्रत्येक विचार, चित्त पर ऐसा प्रभाव छोड़ जाता है, और जब वह प्रभाव सतह पर दिखाई नहीं देता तो भी भीतर से बिना मालूम हुए कार्य करने के लिये उसमें पर्याप्त शक्ति रहा करती है। प्रतिक्षण हम क्या हैं इसका निर्णय मन पर के इन्हीं संस्कारों के समुच्चय द्वारा हुआ करता है। हरएक मनुष्य के चारित्र्य का निर्णय भी इन्हीं संस्कारों के सामूहिक योग द्वारा होता है। यदि

अच्छे संस्कार अधिक हुए तो चारित्र्य अच्छा है और यदि बुरे संस्कार अधिक हुए तो चारित्र्य बुरा है। यदि कोई मनुष्य सतत कुवाक्य सुनता है, कुविचारों को सोचता है, कुकर्म करता है, तो उसका मन कुसंस्कारों से पूर्ण रहेगा। और वे उसके विचारों और कार्यों पर बिना उसके मालूम हुए भी असर डालेंगे। यथार्थ में ये कुसंस्कार सदा कार्य करते रहते हैं। उसके भीतर के इन कुसंस्कारों का सामूहिक योग ही उसमें दुष्कर्म करने के लिये सबल प्रेरक शक्ति को उत्पन्न करेगा, वह अपने कुसंस्कारों के हाथ में यंत्रवत् बन जायगा।

चरित्रगठन।

उसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अच्छे विचारों को सोचता है और अच्छे कार्य करता है तो इन संस्कारों का सामूहिक योग अच्छा होगा और वे उसी प्रकार उसे अपनी इच्छा न रहते हुए भलाई के काम करने के लिये विवश करेंगे। जब कोई मनुष्य बहुत से अच्छे काम कर लेता है और बहुत से अच्छे विचारों को सोच लेता है तो उसमें भलाई करने की एक अदम्य प्रवृत्ति आ जाती है। यदि वह दुष्कर्म करना चाहता है तो उसकी प्रवृत्तियों का सामूहिक योग-रूप उसका मन उसे वैसा करने नहीं देता। वह पूर्ण रूप से सत्प्रवृत्तियों के प्रभाव में है। ऐसी अवस्था हो जाने पर उस मनुष्य की सच्चरित्रता सुप्रतिष्ठित हुई कही जाती है। यदि आप यथार्थ में किसी मनुष्य के चरित्र के विषय में निर्णय करना चाहते हैं तो आप उसके महान् कार्यों की ओर न

देखिये। उस मनुष्य के अत्यन्त साधारण कार्यों की ओर ध्यान दीजिये। सचमुच ये ही कार्य आपको उस श्रेष्ठ पुरुष के यथार्थ चारित्र्य का परिचय करायेंगे। बड़े अवसरों पर तो अत्यन्त नीच मनुष्य भी किसी प्रकार की महानता का भाव ग्रहण कर लेता है, पर यथार्थ में महान् तो अकेला वही है जिसका चारित्र्य, वह चाहे जहाँ क्यों न हो, सदैव उच्च रहता है।

अच्छी और बुरी आदतें।

जब ये संस्कार बहुतेरी संख्या में मन में रह जाते हैं तब वे एक में मिलकर आदत बन जाते हैं। कहा जाता है कि 'आदत द्वितीय प्रकृति है।' वह प्रथम प्रकृति भी है और मनुष्य की सम्पूर्ण प्रकृति है। जो कुछ हम हैं सब आदत का परिणाम है। इसी से हमें सान्त्वना मिलती है, क्योंकि यदि वह केवल आदत है तो हम किसी भी समय उसे बना और बिगाड़ सकते हैं। खराब आदत के लिये एकमात्र उपाय है उसकी विपरीत आदत। सभी खराब आदतें अच्छी आदतों द्वारा वशीभूत की जा सकती हैं। सतत अच्छे कार्य करते रहो और सदा पवित्र विचारों को मन में सोचा करो। नीच भावों को दबाने का यही एकमात्र उपाय है। ऐसा कभी न कहो कि कोई मनुष्य गया बीता है; उसके सुधरने की आशा नहीं की जा सकती; कारण की वह तो एक प्रकार के चारित्र्य—कुछ ऐसी खराब आदतों के समुदाय—को ही ग्रहण किये हुए है जिनका प्रतिरोध नवीन और अच्छी उच्चतर आदतों के द्वारा किया जा सकता है। बारम्बार के

अभ्यास को चारित्र्य कहते हैं और बारम्बार के अभ्यास से ही चारित्र्य का सुधार हो सकता है।

सभी बुराइयों का कारण हम में ही है। किसी दैवी (अप्राकृतिक) व्यक्ति को दोष मत दो। न आशा छोड़ो, न अवसन्न होओ और न यह भी सोचो कि हम ऐसी अवस्था में हैं जहाँ से हम कभी छुटकारा नहीं पा सकते जब तक कि कोई आकर हमें अपने हाथ का सहारा नहीं देता। हम रेशम के कीड़े के समान हैं। हम अपने आप में से ही सूत निकालकर कोष का निर्माण करते हैं और कुछ समय के बाद उसी के भीतर कैद हो जाते हैं। कर्म का यह जाल हमीं ने अपने चारों ओर बुन रखा है और अपने अज्ञान के कारण हमें यह प्रतीत होता है कि हम बद्ध हैं, और सहायता के लिये हम रो रहे हैं और पुकार रहे हैं। पर सहायता कहीं बाहर से तो आती नहीं; वह तो हमारे भीतर से आती है। विश्व के समस्त देवताओं को पुकारो। मैं बरसों पुकारा और अन्त में मैंने देखा कि मुझे सहायता मिल गई। पर वह सहायता मिली भीतर से। और मैंने गलती से जो कुछ कर डाला था उसे मुझे नष्ट कर देना पड़ा। अपने चारों ओर मैंने जो जाल फेंक रखा था, उसे मुझे काट डालना पड़ा। मैंने अपने जीवन में अनेक गलतियाँ की हैं। पर यह स्मरण रहे कि उन गलतियों के बिना मैं आज जो हूँ वह नहीं रहता। मेरा मतलब यह नहीं है कि आप घर जायँ और जान बूझकर गलतियाँ

हम स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करते हैं।

करें; मेरे कहने का उस प्रकार उल्टा अर्थ मत लगाइये। पर जो गलतियाँ आप कर चुके हैं, उनके कारण हताश मत होइये।

गलतियों का कारण है अज्ञान।

हम दुर्बल हैं इस कारण गलती करते हैं और हम अज्ञानी हैं इसलिये दुर्बल हैं। हमें अज्ञानी कौन बनाता है? हम स्वयं ही। हम अपनी आँखों को अपने हाथों से ढँक लेते हैं और अंधेरा है कहकर रोते हैं। हाथों को हटा लो और प्रकाश तो है ही। मनुष्य की आत्मा स्वभाव से ही स्वयंप्रकाश है। अतः हमारे लिये प्रकाश का अस्तित्व सदा ही है। आधुनिक वैज्ञानिक लोग क्या कहते हैं, आप नहीं सुनते? विकास का कारण क्या है? इच्छा। जीवधारी कुछ करना चाहता है, परन्तु परिस्थिति को अनुकूल नहीं पाता; इसी कारण नये शरीर का निर्माण करता है। यह कौन निर्माण करता है? स्वयं वही जीवधारी, उसकी इच्छा। अपनी इच्छाशक्ति को लगाये रहो और वही तुम्हें ऊपर उठाएगी। इच्छा में सारी शक्ति है। यदि इच्छा में ही सर्व शक्ति है तो आप पूछेंगे कि मैं सब कुछ क्यों नहीं कर सकता? पर आप तो केवल अपनी क्षुद्र आत्मा के सम्बन्ध में सोच रहे हैं। आप अपने पीछे की ओर फिरकर अपनी सूक्ष्म जंतु (amoeba) की अवस्था से मनुष्य-शरीर तक देखिये। यह सब किसने बनाया? स्वयं आप की इच्छा ने। क्या आप उसमें सारे सामर्थ्य के रहने की बात को इन्कार कर सकते हैं? जिसने आपको इतने ऊँचे तक उठाया वह आपको और भी अधिक ऊँचा ले जायगा। आवश्यकता है चारित्र्य की इच्छा को सबल बनाने की।

अपने चरित्र का निर्माण करो ।

अगर तुम अपनी गलतियों के नाम से घर जाकर टाट के कपड़े लपेटकर, भभूत रमाकर जन्म भर रोओगे, तो भी उससे तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता, बल्कि उससे तुम्हारी कमजोरी और बढ़ेगी। अगर यह कमरा हजारों वर्षों से अंधकारपूर्ण है तो तुम उसमें जाकर रोना धोना और दुःख करना शुरू करोगे तो क्या अंधकार नष्ट हो जायगा ? दियासलाई जलाइए और क्षण भर में ही प्रकाश का आविर्भाव हो जायगा। "अरे ! मैंने दुष्कर्म किये, बहुत सी गलतियाँ कीं" ऐसा सारी जिंदगी भर सोचते रहने से क्या लाभ ? दुष्कर्म और गलतियों को बताने के लिये किसी प्रेतात्मा की आवश्यकता नहीं है। प्रकाश को ले आओ और दुष्कर्म क्षण भर में नष्ट हो जायगा। अपने चारित्र्य का गठन करो और अपनी सच्ची प्रकृति—दैदीप्यमान, स्वयंप्रकाश नित्य शुद्ध स्वरूप को प्रकट करो और जिस किसी को तुम देखते हो उसी में उसका आवाहन करो।

---

६. धार्मिक शिक्षा

शिक्षा का अन्तरतम मर्म है धर्म। धर्म के विषय में स्वयं मेरी या किसी दूसरे की राय मैं नहीं बता रहा हूँ।

सतों की पूजा।

सत्य सनातन तत्वों को जनता के सामने रखना है। सर्वप्रथम तो हमें बड़े बड़े महात्माओं की पूजा का प्रारम्भ करना है। जिन महात्मा लोगों ने सनातन सत्य का साक्षात्कार किया था उन्हीं को जनता के सामने अनुकरणीय आदर्श के रूप में रखना, जैसे श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, महावीर (श्री हनुमान), श्रीरामकृष्ण आदि। वर्तमान समय के लिये श्रीकृष्ण की वृंदावन-लीला अलग कर दो और सिंह की ध्वनि से गीता की गर्जना करते हुए श्रीकृष्ण की पूजा का ज़ोरों से दूर दूर तक प्रचार करो और सब शक्तियों की खानि दैवी माता 'शक्ति' की पूजा को प्रतिदिन के उपयोग में लाओ। हमें अब अधिकतर आवश्यकता है ऐसे वीर के आदर्श की—जिसकी नसों में सिर से पैर तक रजोगुण का प्रबल तत्व फड़क रहा हो, ऐसा वीर जिसके पास वैराग्य की ढाल और बुद्धि की तलवार हो। हमें अभी आवश्यकता है युद्ध-क्षेत्र के साहसी योद्धा के हृदय की।

महावीर श्री हनुमान के चरित्र को अपना आदर्श बनाओ।

सेवा का आदर्श।

श्रीरामचन्द्र की आज्ञा होते ही उन्होंने समुद्र को लांघ डाला! उनको जीने या मरने की परवाह नहीं थी। इन्द्रियाँ उनके पूरे वश में थीं और वे अपूर्व बुद्धिमान थे। व्यक्तिगत सेवा के इस महान् आदर्श पर अपने जीवन का निर्माण करो। उसी आदर्श से अन्य सब भावनाएँ जीवन में क्रमशः आप से आप प्रकट हो जाएँगी। बिना शंका किये गुरु की आज्ञा का पालन और ब्रह्मचर्य का कड़ाई के साथ आचरण—ये ही सफलता का रहस्य है। जैसे एक ओर हनुमानजी सेवा के आदर्श हैं उसी तरह दूसरी ओर उनमें संसार को थर्रा देने वाला सिंह का साहस है। राम की भलाई के लिये उन्हें अपने जीवन का बलिदान करने में कुछ भी सोच विचार नहीं है। राम की सेवा के सिवाय अन्य सभी विषयों के प्रति उनमें अत्यन्त उदासीनता है। एक मात्र श्रीरामचन्द्र की आज्ञा-पालन ही उनके जीवन का एक प्रण है। ऐसी ही पूर्ण अन्तःकरणपूर्वक भक्ति की आवश्यकता है।

गम्भीर रणभेरी बजने दो।

वर्तमान समय में गोपियों के साथ की श्रीकृष्ण की दैवी लीला उपयोगी नहीं है। बंशीनाद इत्यादि से देश का पुनरुद्धार नहीं होगा। खोल और करताल बजाने तथा कीर्तन की मस्ती में नाचने से सारी जाति की अवनति हो गई है। जिस अत्युच्च साधना के लिये सर्वप्रथम अत्युच्च पवित्रता की आवश्यकता है उसी साधना की नकल करते

करते लोग घोर तमोगुण में डूब गये हैं। क्या हमारे देश में नगाड़े नहीं बनते? क्या भारतवर्ष में बिगुल और भेरी नहीं मिलते? हमारे बालकों को इन बाजों की गम्भीर ध्वनि सुनाओ। बचपन से स्त्रैण संगीत की ध्वनि सुनते सुनते यह देश प्रायः स्त्रियों के देश में परिणत हो गया है। डमरू और सिंगी बजाना है—नगाड़े को पीटना है ताकि युद्ध की गम्भीर तुमुल ध्वनि उठे और हमारी जबान से 'महावीर' 'महावीर' निकले और 'हर' 'हर' 'बम' 'बम' चिल्लाते हुए हम दिशाओं को गुंजा दें। मनुष्य के केवल कोमल भावों को जगाने वाले संगीत को कुछ समय के लिये अब बंद कर देना है। लोगों को ध्रुपद राग सुनने के आदी बनाना है।

उदात्त वैदिक मंत्रों की मेघगर्जना के द्वारा देश में पुनः प्राणों का संचार करना है। सब बातों में वीर पुरुष के कठोर भाव को जागृत करना है। ऐसे आदर्श के अनुसार यदि अपने चरित्र का संगठन करोगे तो सहस्रों गुण आप से आप आ जायँगे। पर सावधानी इस बात की रहे कि आदर्श से इंच भर भी डिगने न पावो। हिम्मत कभी मत हारो। खान-पान में, वेष-भूषा में, सोने-बैठने में, गाने में, खेलने में, सुख में या दुःख में सदा अत्युच्च नैतिक साहस ही प्रकट करो। अपने मन को कभी भी कमज़ोरी के वश न होने दो। 'महावीर' का स्मरण करो, 'कालीमाई' की याद करो और तुम देखोगे कि सारी दुर्बलता और सारी कायरता तुरन्त भाग जाती है।

पुराने धर्मों में, ईश्वर में विश्वास न करनेवाले को नास्तिक कहा गया है। नये धर्म का कहना है कि जो अपने में विश्वास नहीं रखता वह नास्तिक है। पर यह स्वार्थमय विश्वास नहीं है। इसका अर्थ है 'सभी में विश्वास', क्योंकि तुम तो सब कुछ हो। अपने लिये प्रेम का अर्थ है सब के लिये प्रेम—पशुओं के प्रति प्रेम और अन्य सब चीज़ों के प्रति प्रेम, क्योंकि तुम सब एक हो। यह महान् विश्वास ही संसार का सुधार करेगा। स्वयं अपने में श्रद्धा का आदर्श ही हमारा सबसे बड़ा सहायक है। यदि आत्मविश्वास की शिक्षा और अभ्यास अधिक विस्तार के साथ हुआ होता तो मुझे निश्चय है कि हमारे वर्तमान दुःख और बुराइयों का बहुतेरा अंश दूर हो गया होता। मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में श्रेष्ठ स्त्रीपुरुषों के जीवन में यदि कोई अत्यन्त प्रबल प्रेरक शक्ति थी तो वह आत्मविश्वास की ही शक्ति थी। हम बड़े होंगे ऐसे विश्वास के साथ जन्म लेने के कारण वे सचमुच बड़े हो गये।

नया धर्म।

अनंत बल धर्म है। बल ही पुण्य है। दुर्बलता पाप है। सभी पापों और सभी बुराइयों के लिये एक शब्द पर्याप्त है और वह शब्द है—दुर्बलता। दुर्बलता ही सभी स्वार्थीपन की जड़ है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य दूसरे का नुकसान करता है। सब कोई जान जायँ कि वे कौन हैं, दिन और रात उन्हें यही जपने दो 'सोऽहम्'। माता

बल।

के स्तन के दूध के साथ 'मैं वही हूँ (सोऽहम्)' इस शक्ति की भावना को पी लेना चाहिये। प्रथम इसका श्रवण करना है; तत्पश्चात् उसका मनन करना चाहिये और तब उस मनन या विचार से ऐसे कार्यों की उत्पत्ति होगी जैसे कार्य संसार में कभी देखे नहीं गये हैं।

सत्य।

साहस के साथ सत्य बोलो। सभी सत्य सनातन हैं। सत्य ही सभी आत्माओं की प्रकृति है। और इसी में सत्यता की परीक्षा है; जो भी बात तुममें शारीरिक, बौद्धिक या आध्यात्मिक निर्बलता लाए उसका विषवत् त्याग करो। उसमें कोई जीवन नहीं है, वह सत्य नहीं हो सकता। सत्य शक्ति देने वाला है। सत्य शुद्धता है, सत्य ही सब ज्ञान है। सत्य शक्ति देने वाला होना चाहिये, प्रकाश देने वाला होना चाहिये और स्फूर्तिदायक होना चाहिये। प्रकाशमान, शक्तिदायी और प्रज्वलित तत्वज्ञान के लिये अपने उपनिषदों की ओर देखो। इसी तत्वज्ञान को ग्रहण करो। सबसे बड़े सत्य संसार में सबसे सरल पदार्थ हैं—तुम्हारे अस्तित्व के समान सरल हैं। उपनिषदों के सत्य तुम्हारे सामने हैं। उन्हें ग्रहण करो, उनके ही अनुसार अपनी जीवनचर्या बनाओ और भारत की मुक्ति सन्निकट है।

शारीरिक शक्ति।

शारीरिक दुर्बलता ही हमारे दुःखों के कम से कम एक तृतीयांश का कारण है। हम आलसी हैं; हम मिलकर काम नहीं कर सकते। हम कई बातों

को तोते की नाईं दुहराते हैं, पर उनके अनुसार काम नहीं करते। 'कहना' और 'करना नहीं' यह हमारा स्वभाव बन गया है। कारण क्या है ? शारीरिक दुर्बलता। इस प्रकार के निर्बल मस्तिष्क से कोई काम नहीं हो सकता। हमें उसे सबल बनाना चाहिये। सर्वप्रथम हमारे नवयुवकों को बलवान बनना चाहिये। धर्म पीछे आ जायगा। मेरे नवयुवक मित्रो ! बलवान बनो—तुमको मेरी यही सलाह है। गीता के अभ्यास की अपेक्षा फुटबाल के द्वारा तुम स्वर्ग के अधिक निकट पहुँच जाओगे। तुम्हारी कलाई और बाहुदंड की मजबूती बढ़ने पर तुम गीता को अधिक अच्छी तरह समझोगे। तुम्हारे रक्त में शक्ति की मात्रा बढ़ने पर तुम श्रीकृष्ण की प्रबल प्रतिभा और अपार शक्ति को अधिक अच्छी तरह समझने लगोगे। तुम जब अपने पैरों पर दृढ़ता के साथ खड़े होओगे और तुमको जब प्रतीत होगा कि हम भी मनुष्य हैं तब तुम उपनिषदों को अच्छी तरह समझोगे और आत्मा की महिमा को जानोगे।

निर्भयता।

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे 'बल' 'बल' की महिमा बता रहा है। संसार में यही एक साहित्य है जिसमें तुम्हें 'अभी :' (निर्भय) शब्द का उपयोग बार बार दिखाई देगा। संसार के और किसी धर्मशास्त्र में यह विशेषण ईश्वर या मनुष्य को नहीं लगाया गया है। मेरे मन में भूतकाल की घटनाओं में से पश्चिम के उस महान् बादशाह 'महान् सिकन्दर' का दृश्य सामने आता है। मानो यही चित्र मैं

देखता हूँ कि वह महान् सम्राट सिंधु नदी के किनारे खड़ा होकर जंगल के हमारे एक संन्यासी से बोल रहा है। जिससे वह बोल रहा है वह वृद्ध पुरुष पत्थर की एक चट्टान पर नंगधडंग बैठा हुआ है। बादशाह उसके ज्ञान पर मुग्ध होकर उसे यूनान ले जाने के लिये सुवर्ण और मानप्रतिष्ठा का प्रलोभन दिखा रहा है। और यह पुरुष उसके सुवर्ण की ओर और प्रलोभनों की ओर केवल मुस्कराता हुआ इन्कार कर रहा है। और तब तो बादशाह अपनी बादशाही अस्तियार के बल पर खड़ा होकर ललकारता है—"अगर तुम नहीं चलोगे तो मैं तुम्हें जान से मार डालूँगा।" वह पुरुष एकदम हँस पड़ता है और कहता है, "जैसी झूठ तुम अभी बोले वैसी झूठ तुम जन्मभर नहीं बोले थे; मुझे कौन मार सकता है? मैं तो अजन्मा और अविनाशी आत्मा हूँ।" यह है बल।

उपनिषद् शक्ति की खानि है।

हमें दुर्बल बनाने के लिये हजारों व्यक्ति एवं बातें हैं और किस्से-कहानियाँ भी तो पर्याप्त हैं। अतः मेरे मित्रो! मैं तुम्हारे साथ उसी रक्त से जन्म लेने वाला, जो तुम्हारे साथ जीता हूँ और मरूँगा, तुमसे कहता हूँ कि हमें बल चाहिये, बल चाहिये—प्रतिक्षण बल की आवश्यकता है। और उपनिषद बल की बड़ी भारी खदान है। उनमें सारे संसार को स्फूर्ति देने लायक बल भरा हुआ है। सारा संसार उनके द्वारा सजीव बनाया जा सकता है, शक्तिसम्पन्न हो सकता है और स्फूर्तिमय बन सकता है। सभी जातियों, धर्मों और मतावलम्बियों के दुर्बल, दुःखी

और दलितों को वे बिगुल की आवाज से अपने पैरों पर खड़े होने और स्वतंत्र बनने के लिये पुकारेंगे। स्वतंत्रता, भौतिक स्वतंत्रता, मानसिक स्वतंत्रता और आध्यात्मिक स्वतंत्रता उपनिषदों के मूल मंत्र हैं।

साक्षात्कार ही धर्म है।

परन्तु शास्त्रों के द्वारा हम धार्मिक नहीं बन सकते। हम संसार की सभी पुस्तकों को भले ही पढ़ डालें और उस पर भी हम धर्म या ईश्वर का एक अक्षर न समझें। हम जीवन भर बोलते रहें और तर्क करते रहें, पर हम सत्य का एक शब्द तब तक नहीं समझेंगे जब तक कि स्वयं उसका अनुभव न कर लें। किसी मनुष्य को केवल कुछ पुस्तकें देकर ही 'सर्जन' नहीं बना सकते। किसी देश को देखने की मेरी इच्छा की तृप्ति तुम मुझे वहाँ का नक्शा दिखाकर नहीं करा सकते। नक्शों के द्वारा अधिक जानकारी प्राप्त करने की लालसा बढ़ सकती है, उनका इससे अधिक उपयोग नहीं हो सकता। मंदिर और गिरजाघर, पुस्तक और विधियाँ धर्म के केवल प्रारम्भिक अभ्यास कराने की सामग्रियाँ (Kindergarten) हैं—आध्यात्मिक क्षेत्र के जिज्ञासु को अगली सीढ़ियों में कदम रखने लायक सबल बनाने के लिये हैं। सिद्धान्तों, सूत्रों या बौद्धिक विवादों में धर्म नहीं है। हम आत्मा हैं यह जानकर तद्रूप बन जाना ही धर्म है, अपरोक्षानुभूति ही धर्म है।

हृदय को सुसंस्कृत बनाओ।

हम संसार के सब से अधिक बुद्धिमान मनुष्य होने पर भी ईश्वर के कुछ भी समीप न पहुँचे। इसके विपरीत सर्वोच्च बौद्धिक शिक्षा प्राप्त किये हुए

लोगों में से कई एक अधार्मिक पुरुष निकलते हैं। पाश्चात्य सभ्यता की बुराइयों में से यह भी एक है कि केवल बौद्धिक शिक्षा हृदय की परवाह न करते हुए दी जाती है। वह मनुष्य को दस गुना अधिक स्वार्थी बना देती है। हृदय और मस्तिष्क का झगड़ा हो तो हृदय का अनुसरण करना चाहिये। हृदय ही उस उच्चतम सीमा को पहुँचाता है जहाँ बुद्धि कभी जा नहीं सकती। वह बुद्धि के परे जाकर वहाँ पहुँचता है जिसे 'अन्तःस्फूर्ति' कहते हैं। हृदय को सदा सुसंस्कृत बनाओ। हृदय में से ईश्वर बोलता है।

धर्मान्धता का रोग।

मानव जाति को जिस अत्युच्च प्रेम का अनुभव हुआ है वह धर्म से ही प्राप्त हुआ है। धार्मिक क्षेत्र के पुरुषों से ही संसार के अत्यन्त उदार शान्ति-संदेश प्राप्त हुए हैं। उसी प्रकार संसार में घोरतम निन्दावाक्य भी धार्मिक पुरुषों द्वारा ही कहे गये हैं। प्रत्येक धर्म अपने सिद्धान्तों को सामने रखता है और केवल ये ही सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसा ज़ोर देता है। कोई कोई तो अपने धर्ममतों को जबरदस्ती मनवाने के लिये तलवार तक खींचने लग जाते हैं। दुष्टता के कारण ऐसा नहीं किया जाता, बल्कि मनुष्य के मन की एक प्रकार की बीमारी, जिसे धर्मान्धता कहते हैं, वही इसका कारण है। तो भी इन झगड़ों और झंझटों, धर्मों और मतों की घृणा और द्वेष के होते हुए भी समय समय पर शान्ति और मेल की घोषणा करने वाली शक्तिगर्भ आवाज उठती रही है।

अब ऐसा अवसर आ गया था कि कोई ऐसा पुरुष जन्म ले जो हर एक धर्म में उसी तत्व को कार्य करते देखे; उसी एक ईश्वर को देखे; प्रत्येक प्राणी में ईश्वर को देखे, जिसका अन्तःकरण निर्धन, निर्बल और पददलित के लिये विलाप करे; और साथ ही साथ जिसकी असाधारण तीव्र बुद्धि न केवल भारतवर्ष के, वरन् भारतवर्ष के बाहर के देशों के भी विरोधी मतमतान्तरों में समन्वय स्थापित कर दे और इस प्रकार अद्भुत समन्वय और सार्वभौम धर्म का आविष्कार करे। ऐसे पुरुष का जन्म हुआ और मुझे उनके चरणों के समीप वर्षों तक बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैंने अपने गुरुदेव से इस अद्भुत सत्य को सीखा कि संसार के भिन्न भिन्न धर्म एक दूसरे से असंगत या विरोधी नहीं हैं। वे सब एक ही सनातन धर्म के भिन्न भिन्न रूप हैं। श्रीरामकृष्ण किसी के विरुद्ध कोई अप्रिय शब्द नहीं बोले। उनमें ऐसी सुंदर सहिष्णुता थी कि हरएक धर्मवाला यही समझता था कि ये उसी के धर्म के माननेवाले हैं। वे प्रत्येक पर प्रेम करते थे; उनके लिये सभी धर्म सच्चे थे। उनका सारा जीवन मतवाद और सिद्धान्तवाद की संकुचित सीमा को तोड़ने में ही बीता।

समन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण।

तब तो अपना मूलमंत्र 'स्वीकार' को बनाएँ—'बहिष्कार' को नहीं। केवल सहिष्णुता ही नहीं, क्योंकि तथाकथित सहिष्णुता ईश्वरनिन्दा है। सहिष्णुता का अर्थ होता है कि मैं समझता हूँ तुम भूल

सहिष्णुता नहीं, स्वीकृति।

करते हो और यह जानते हुए तुम्हें जीवित रहने देता हूँ। क्या ऐसा सोचना ईश्वर की निन्दा नहीं है कि तुम और मैं दूसरों को जीवित रहने देते हैं? मैं भूतकाल के समस्त धर्मों को स्वीकार करता हूँ और उनकी पूजा करता हूँ। मैं ईश्वर की पूजा सभी धर्मों के अनुसार करता हूँ चाहे जिस रूप में वे उसकी पूजा करते हों। मैं मुसलमान के मसजिद में चला जाऊँगा; मैं ईसाई के गिरजाघर में जाकर क्रास के सामने घुटने टेकूँगा। मैं बौद्ध विहार में प्रविष्ट होकर बुद्ध और उनके धर्म का आश्रय ग्रहण करूँगा। मैं अरण्य में जाकर उस हिन्दू के साथ ध्यान करने बैठ जाऊँगा जो प्रत्येक हृदय को प्रकाशित करने वाले ज्योति के दर्शन करने का प्रयत्न कर रहा है।

सतत तत्वदर्शन।

मैं केवल इतना नहीं करूँगा बल्कि मै अपना हृदय भविष्य में जो कुछ आ जाय उसके लिये खुला रखूँगा। क्या ईश्वर का ग्रंथ समाप्त हो गया? या कि लगातार प्रकट होना अभी भी शुरू है? वह अद्भुत ग्रंथ है—संसार के ये आध्यात्मिक प्रत्यय या प्रकाशन अद्भुत हैं। बाइबिल, वेद, कुरान और अन्य धार्मिक पुस्तक-समुदाय केवल उतने पृष्ठमात्र हैं और अनंत असंख्यक पृष्ठ अभी भी प्रकाशित होने के लिये अवशिष्ट हैं। भूतकाल की सभी वस्तुओं को ग्रहण करो, वर्तमान के प्रकाश का आनंद भोगो और भविष्य में आनेवाले सभी बातों के लिये हृदय को खोल रखो। अतीतकाल के सभी संतों को वंदना, वर्तमान के सभी महात्माओं को प्रणाम और भविष्य में आने वाले सभी सज्जनों को नमस्कार!

---

७. स्त्री-शिक्षा

प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा।

यह समझना बहुत कठिन है कि इस देश में पुरुषों और स्त्रियों के बीच इतना भेद क्यों रखा गया है जब कि वेदान्त की यह घोषणा है कि सभी प्राणियों में वही एक आत्मा विराजमान है। स्मृतियों आदि को लिखकर कड़े नियमों का बन्धन उन पर रखकर पुरुषों ने स्त्रियों को केवल सन्तानोत्पादक यंत्र बना रखा है। अवनति के युग में जब कि पुरोहित लोगों ने अन्य जातियों को वेदाध्ययन के लिये अयोग्य ठहराया उसी समय उन्होंने स्त्रियों को भी अपने अधिकारों से वंचित कर दिया। वैदिक और औपनिषदिक युग में मैत्रेयी, गार्गी आदि पुण्यस्मृति महिलाओं ने ऋषियों का स्थान ले लिया था। सहस्रों वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी याज्ञवल्क्य को ब्रह्म के विषय में शास्त्रार्थ करने के लिये ललकारती है।

यथार्थ शक्तिपूजा।

सभी उन्नत राष्ट्रों ने स्त्रियों को समुचित सम्मान देकर ही महानता प्राप्त की है। जो देश और जो राष्ट्र स्त्रियों का आदर नहीं करते वे कभी बड़े नहीं

हो पाये हैं और न भविष्य में ही कभी बड़े होंगे। यथार्थ शक्ति-पूजक तो वही है जो यह जानता है कि ईश्वर विश्व में सर्वव्यापी शक्ति है और उसी शक्ति को वह स्त्रियों में प्रकट रूप में देखता है। अमेरिका में पुरुष अपनी महिलाओं को इसी दृष्टि से देखते हैं और उनके साथ अत्युत्तम बर्ताव करते हैं, इसी कारण वे लोग सुसम्पन्न हैं, विद्वान हैं, इतने स्वतंत्र हैं और शक्तिशाली हैं। हमारा देश अवनत दशा को पहुँच गया है इसका मुख्य कारण शक्ति की इन सजीव प्रतिमाओं के लिये आदरबुद्धि न होना ही है। मनु महाराज का कहना है—"जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहीं देवता प्रसन्न रहते हैं और जहाँ उनका आदर नहीं होता वहाँ सभी कार्य और प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं।"* जहाँ ये स्त्रियाँ उदासी का जीवन व्यतीत करती हैं उस कुटुम्ब या देश की उन्नति की कोई आशा नहीं हो सकती।

शिक्षा ही उनकी समस्याओं को हल करेगी।

स्त्रियों की बहुतेरी कठिन समस्यायें हैं, पर उनमें एक भी ऐसी नहीं है जो उस जादू भरे शब्द 'शिक्षा' के द्वारा हल न हो सके। हमारे मनु महाराज की क्या आज्ञा है? "पुत्रियों का पालन और उनकी शिक्षा पुत्रों के समान ही ध्यान और सावधानी के साथ होनी चाहिये।" जैसे पुत्रों का विवाह तीस वर्ष की आयु

* यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

तक ब्रह्मचर्यपालन के पश्चात् होना चाहिये उसी प्रकार पुत्रियों को भी ब्रह्मचर्यपालन करना चाहिये और उन्हें भी मातापिता द्वारा शिक्षा प्राप्त होनी चाहिये। पर हम लोग यथार्थ में कर क्या रहे हैं? उन लोगों को सदैव निःसहाय अवस्था में रहने और दूसरों पर गुलाम के समान अवलम्बित रहने की शिक्षा दी जाती है। इसी कारण किंचित् भी दुःख या भय का अवसर आने पर वे आँखों से आँसू बहाने के सिवाय और किसी योग्य नहीं रहतीं। स्त्रियों को ऐसी अवस्था में रखना चाहिये कि वे अपनी समस्याओं को अपने ही तरीके से हल कर सकें। हमारी भारतीय स्त्रियाँ इसके लिये संसार की अन्य स्त्रियों के समान ही योग्य हैं।

धर्म उसका केन्द्र है।

स्त्री-शिक्षा का विस्तार धर्म को केन्द्र बनाकर करना चाहिये। अन्य सभी शिक्षायें धर्म की अपेक्षा गौण हैं। धार्मिक शिक्षा, चरित्रगठन, ब्रह्मचर्य-पालन — इनकी ओर ध्यान देना चाहिये। हमारी हिन्दू स्त्रियाँ सतीत्व का अर्थ आसानी से समझती हैं, क्योंकि यह उनका आनुवंशिक गुण है। सर्वप्रथम तो उनमें यह आदर्श अन्य गुणों की अपेक्षा सुदृढ़ किया जाय जिससे कि उनका चारित्र्य सबल बने और उसीकी शक्ति से वे अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था में—चाहे विवाहित या अविवाहित (यदि वे अविवाहित रहना चाहें तो)—बिलकुल निडर होकर पावित्र्य से रंचभर भी डिगने की अपेक्षा अपने प्राणों को समर्पण करने के लिये तैयार रहें।

आदर्श—सीता।

भारतवर्ष की स्त्रियों को सीता के पदचिह्नों का अनुसरण करके अपनी उन्नति करनी चाहिये। सीता का चरित्र अनुपम है। सच्ची भारतीय स्त्री का वह नमुना ही है, क्योंकि एकमात्र सीता के चरित्र से ही सर्वश्रेष्ठ स्त्री के भारतीय आदर्श प्राप्त हुए हैं। और यहीं वे आदर्श सहस्रों वर्ष तक आर्यावर्त के लम्बे चौड़े विशाल क्षेत्र में प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बालक द्वारा पूजित होते हुए अवस्थित हैं। यह प्रतापशालिनी सीता पवित्रता से भी अधिक पवित्र, धैर्य और सहनशीलता की मूर्ति सदा वैसी ही रहेगी। दुःखमय जीवन बिना आह लिये भुगतने वाली, सदा शुद्ध और परम पतिव्रता वह सीता सदा हम लोगों का महान् आदर्श और हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेगी। वह हमारे देशवालों के अन्तर्मर्म में प्रवेश कर गई हैं। हमारी स्त्रियों को आधुनिक रंग देने का प्रत्येक प्रयत्न, यदि वह हमारी स्त्रियों को सीता के आदर्श से दूर हटाए तो तुरन्त ही असफल हो जाता है, यही हम प्रतिदिन देखते हैं।

त्याग की शिक्षा।

इस युग की वर्तमान आवश्यकताओं का अध्ययन करने पर यह आवश्यक दिखता है कि उनमें से कुछ को वैराग्य के आदर्श की शिक्षा दी जाय जिससे कि वे युगान्तर से अपने रक्त में संजात ब्रह्मचर्यरूप सद्गुण की शक्ति द्वारा प्रज्वलित होकर आजीवन कुमारीव्रत का पालन करें।

हमारी जन्मभूमि को अपनी समुन्नति के लिये अपने कुछ बालकों को विशुद्धात्मा ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बनाने की आवश्यकता है। यदि स्त्रियों में से एक भी ब्रह्मज्ञानी हो जाय तो उसके व्यक्तित्व के प्रकाश से सहस्रों स्त्रियाँ स्फूर्ति प्राप्त करेंगी और सत्य के प्रति जागृत हो जायँगी। इससे देश और समाज का बड़ा उपकार होगा।

लौकिक शिक्षा।

सुशिक्षिता और सच्चरित्रवती ब्रह्मचारिणी शिक्षा-कार्य का भार अपने ऊपर लें। ग्रामों और शहरों में केन्द्र खोलकर स्त्री-शिक्षा के प्रसार का यत्न करें। ऐसे सच्चरित्र निष्ठावान उपदेशकों के द्वारा देश में स्त्री-शिक्षा का यथार्थ प्रचार होगा। इतिहास और पुराण, गृहव्यवस्था और कलाकौशल, गृहस्थजीवन के कर्तव्य और चरित्रगठन के सिद्धान्तों की शिक्षा देनी चाहिये। और दूसरे विषय—सीना-पिरोना, गृहकार्य-नियम, शिशुपालन आदि भी सिखाये जायँ। जप, पूजा और ध्यान शिक्षा के आवश्यक अंग हों। और दूसरे गुणों के साथ साथ उन्हें शूरता और वीरता के भाव भी प्राप्त करने चाहिये। आधुनिक युग में उनको आत्मरक्षा के उपाय भी सीख लेने की आवश्यकता है—झांसी की रानी कैसी अपूर्व स्त्री थी! इस प्रकार हम भारतवर्ष के कार्य के लिये संघमित्रा, लीला, अहल्याबाई और मीराबाई के आदर्शों को चरितार्थ करनेवाली तथा अपनी पवित्रता, निर्भयता और ईश्वर के पादस्पर्श द्वारा प्राप्त

आत्मरक्षा।

शक्ति के कारण वीरमाता बनने योग्य महान् निर्भय स्त्रियों को सामने लाएंगे। हमें यह भी करना होगा कि वे समय पर गृह की आदर्श माता बनें। जिन सद्गुणों के कारण हमारी ये मातायें प्रसिद्ध हैं उनकी सन्तान इन सद्गुणों की और भी उन्नति करेंगी। शिक्षित और धार्मिक माताओं के ही घर में महापुरुष जन्म लिया करते हैं।

यदि स्त्रियाँ उन्नति प्राप्त कर लें तो उनके बालक अपने उदार कार्यों के द्वारा देश का नाम उज्ज्वल करेंगे; तब तो संस्कृति, ज्ञान, शक्ति और भक्ति देश में जागृत हो जायगी।

---

८. जनसमूह की शिक्षा

राष्ट्र के प्रति महान् पाप।

भारतवर्ष के गरीबों और नीचों की दशा का स्मरण कर मेरे अन्तःकरण में पीड़ा होती है। वे प्रतिदिन अधिकाधिक नीचे गिर रहे हैं। निर्दय समाज के द्वारा उन पर कठोर आघात हो रहा है। उसे वे अनुभव करते हैं, पर वे यह नहीं जानते कि आघात कहाँ से हो रहा है। वे भी मनुष्य हैं यह बात वे भूल गये हैं। मेरा अन्तःकरण इतना भरा हुआ है कि मैं अपने दुःख के भावों को प्रकट नहीं कर सकता। जब तक करोड़ों मनुष्य भूख और अज्ञान में जीवन बिता रहे हैं तब तक मैं प्रत्येक मनुष्य को जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ है और उनकी दशा की ओर ध्यान नहीं देता, देशद्रोही मानता हूँ। हमारा महान् राष्ट्रीय पाप जनसमुदाय की अवहेलना करना ही है और यही हमारे अधःपतन का कारण है। राजनीति चाहे जितनी अधिक मात्रा में रहे, पर उससे कोई लाभ नहीं होगा जब तक कि भारतवर्ष का जनसमूह पुनः एक बार सुशिक्षित न हो जाय, पेट भर भोजन पाने लायक न हो जाय और हर प्रकार से उनकी ओर सावधानी से ध्यान न दिया जाय।

देश उसी अनुपात में उन्नत हुआ करता है, जिस अनुपात मे वहाँ के जनसमूह में शिक्षा और बुद्धि का प्रसार हो। भारतवर्ष की पतित अवस्था का मुख्य कारण मुट्ठीभर लोगों का सम्पूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर एकाधिपत्य कर लेना ही है। यदि हम पुनः उन्नत होना चाहें तो हम जनसमूह में शिक्षा का प्रसार करने से ही वैसा हो सकते हैं। निम्नवर्ग के लोगों को अपने खोये हुए व्यक्तित्व का विकास करने के लिये शिक्षा देना ही उनकी एकमात्र सेवा करना है। उनके सामने विचारों को रखो। संसार में उनके चारों ओर क्या चला है उसकी ओर उनकी आँखें खोलना है और तब वे अपनी मुक्ति का कार्य स्वयं कर लेंगे। प्रत्येक राष्ट्र, स्त्री और पुरुष को अपनी मुक्ति का कार्य स्वयं करना चाहिये। उनके सामने विचारों को रख दो—इतनी ही सहायता उन्हें आवश्यक है और बाकी सब उसका परिणामस्वरूप आ जायगा। हमारा काम है भिन्न भिन्न रासायनिक द्रव्यों को एक साथ रख देना और कण-निर्माण (Crystallisation) प्रकृति के नियम के द्वारा ही सम्पन्न हो जायगा।

जनसमूह को शिक्षित बनाना ही एकमेव उपाय है।

मेरा विचार है कि सर्वप्रथम उन आध्यात्मिक रत्नों को जो हमारी पुस्तकों में बंद हैं और केवल थोड़े ही लोगों के अधिकार में हैं—मानो मठों और जंगलों में छिपे हुए हैं—उन रत्नों को बाहर निकालना है, उनमें से ज्ञान को प्रकट करना है—न केवल उन

आध्यात्मिक सत्यों को उनकी पहुँच के भीतर ला दो।

हाथों में से जहाँ वे छिपे हुए हैं बल्कि पहुँच के अत्यधिक बाहर के सैकड़ों संस्कृत शब्दों के सुदृढ़ बंद संदूक में से, जहाँ वे सुरक्षित रखे हुए हैं। एक शब्द में मेरा अभिप्राय उनको लोकप्रिय बनाने का है। मैं उन विचारों को सामने प्रकट करके भारतवर्ष के प्रत्येक मनुष्य की सार्वजनिक सम्पत्ति बना देना चाहता हूँ—चाहे वह मनुष्य संस्कृत भाषा जाने या न जाने। मार्ग में बड़ी कठिनाई है संस्कृत भाषा की—हमारी उस प्रभावशाली भाषा की; और हमारी यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक कि—यदि यह सम्भव हो—हमारे देश भर के लोग संस्कृत भाषा के योग्य विद्वान न बन जायँ। यह कितनी बड़ी कठिनाई है इसे तुम समझ लो। मैं जन्मभर इस भाषा को सीखता रहा हूँ तिसपर भी प्रत्येक नई पुस्तक मुझे नई मालूम पड़ती है। तब जो लोग उस भाषा का अच्छा अभ्यास करने के लिये समय नहीं पाते उनके लिये यह कितना कठिन होगा! इसी कारण उन विचारों को जनता की भाषा में सिखाना चाहिये। जनसमूह को उनकी निजी भाषा में शिक्षा दो। उनके सामने विचारों को रखो; वे जानकारी प्राप्त कर लेंगे—पर और भी कुछ आवश्यक होगा। उन्हें संस्कृति दो। जब तक तुम उन्हें संस्कृति नहीं दोगे, जनसमूह की उन्नत दशा को कोई स्थायी रूप प्राप्त नहीं हो सकता।

मातृभाषा द्वारा शिक्षा दो।

साथ ही साथ, संस्कृत शिक्षा भी उसीके साथ चलनी चाहिये,

संस्कृत शिक्षा।

क्योंकि संस्कृत शब्दों की ध्वनिमात्र से हमारी जाति को प्रतिष्ठा, बल और शक्ति प्राप्त होती है। भगवान बुद्ध ने भी संस्कृत भाषा की शिक्षा जनसमूह द्वारा प्राप्त करना रोककर एक बड़ी गलती की। वे शीघ्र और तात्कालिक परिणाम चाहते थे। इसीलिये उन दिनों की 'पाली' भाषा में उन्होंने भाषान्तर करके उपदेश दिया। बात तो बड़ी भारी थी। वे जनता की भाषा में बोले और जनसमूह ने भी उनकी बात को समझ लिया। इससे उनके विचारों का प्रचार बहुत शीघ्र हुआ और वे दूर दूर तक पहुँच गये। पर उसके साथ संस्कृत का प्रचार करना था। ज्ञान तो प्राप्त हुआ, पर उसमें प्रतिष्ठा नहीं थी। जब तुम उसे प्रतिष्ठा नहीं देते, एक और जाति पैदा हो जायगी जो संस्कृत भाषा का लाभ रहने के कारण औरों की अपेक्षा शीघ्र ऊँची उठ जायगी।

झोपड़ियों में राष्ट्र।

राष्ट्र का निवास झोपड़ी में होता है, यह बात याद रखिये। तुम्हारा कर्तव्य वर्तमान समय में यही है कि देश के एक भाग से दूसरे में जाओ, ग्राम ग्राम में जाओ और लोगों को समझाओ कि अब आलस्य के साथ केवल बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। उन्हें अपनी यथार्थ अवस्था का परिचय कराओ और कहो, "भाइयो! सब कोई उठो! जागो! अब और कितना सोओगे!" जाओ और उन्हें अपनी अवस्था सुधारने की सलाह दो और शास्त्रों की बातों को विशद रूप से सरलतापूर्वक समझाते हुए उदात्त सत्य का ज्ञान कराओ। उनके मन में यह बात

जमा दो कि धर्म के विषय में उनका ब्राह्मणों के समान ही अधिकार है। इन जाज्वल्यमान मंत्रों में चाण्डालों तक को दीक्षित करो। जीवन की आवश्यकताओं और रोजगार-धंधा, खेती आदि के विषय में सरल शब्दों में शिक्षा दो।

जीवन के हर विभाग को आध्यात्मिक बना दो।

शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीत गईं। जातिवालों के, राजाओं के और विदेशियों के सहस्रों वर्ष के असह्य अत्याचारों ने उनकी सारी शक्तियों को नष्ट कर दिया है। और अब शक्ति को प्राप्त करने के लिये प्रथम कर्तव्य है उपनिषदों का आश्रय लेकर यह विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ,' 'मुझे तलवार काट नहीं सकती;' " मुझे शस्त्र छेद नहीं सकता; अग्नि जला नहीं सकती; वायु सुखा नहीं सकती; मैं सर्वशक्तिमान हूँ; मैं सर्वदर्शी हूँ।" वेदान्त के ये विचार जंगल और गुफाओं से बाहर निकालना चाहिये; ये विचार वकील और जजों के समक्ष आएँ, धार्मिक सभामंचों में प्रकट हों, गरीबों के झोपड़ों में जायँ, जहाँ ढीमर मछली मारते हों वहाँ और जहाँ विद्यार्थी विद्याभ्यास करते हों वहाँ भी फैलाये जायँ। यह संदेश प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बालक के लिये है चाहे जो पेशा वे करते हों और चाहे जहाँ वे हों। ये ढीमर और ये अन्य सब, उपनिषदों के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य कैसे कर सकते हैं? मार्ग बता दिया गया है। अगर ढीमर सोचने लगे कि मैं आत्मा हूँ तो वह आगे से अच्छा ढीमर होगा। अगर

विद्यार्थी यह अनुभव करने लगे कि मैं आत्मा हूँ तो वह अधिक अच्छा विद्यार्थी हो जायगा।

शिक्षा का प्रचार घर घर में होना चाहिये।

एक बात जो भारतवर्ष में सभी बुराइयों की जड़ में है, वह गरीबों की अवस्था है। मान लो कि तुमने प्रत्येक गाँव में एक निःशुल्क पाठशाला खोल दी तो भी उससे कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि गरीब लड़के पाठशाला में आने की अपेक्षा अपने पिता की सहायता करने खेतों में जायँगे या और कोई जीविका का धंधा करेंगे। तब अगर पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं जाता तो मुहम्मद को ही पहाड़ के पास जाना होगा। अगर गरीब बालक शिक्षा लेने नहीं आ सकता तो शिक्षा को ही उसके पास पहुँचना चाहिये। हमारे देश में ही सहस्रों एकचित्त, स्वार्थत्यागी संन्यासी हैं जो एक ग्राम से दूसरे ग्राम में धर्मोपदेश करते फिरते हैं। यदि उनमें से कुछ की योजना भौतिक विषयों की भी शिक्षा के लिये हो सके तो वे एक स्थान से दूसरे स्थान को, एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे को, न केवल धर्मोपदेश करते हुए वरन् शिक्षाकार्य भी करते हुए जायँ। मान लो इनमें से दो मनुष्य सन्ध्या के समय किसी गाँव में अपने साथ कैमेरा, दुनिया का गोला, कुछ नक्शे आदि लेकर गये तो वे बहुतसा ज्योतिष और भूगोल अनजान मनुष्यों को सिखा सकते हैं। भिन्न भिन्न देशों की कहानियाँ बताते हुए वे गरीबों को जन्मभर में पुस्तकों के द्वारा जो

जानकारी प्राप्त होती उससे सौगुना अधिक कानों के द्वारा सिखा सकते हैं। आधुनिक विज्ञान की सहायता से उनमें ज्ञान को प्रज्वलित कर दो। उन्हें इतिहास, भूगोल, विज्ञान और साहित्य पढ़ाओ और इन्हीं के साथ साथ, इन्हीं के द्वारा धर्म के गम्भीर सत्य की भी शिक्षा दो।

जीविका के लिये हड़बड़ाहट में लगे रहने के कारण उन्हें ज्ञान की जागृति का अवसर नहीं मिला है। वे अब तक यंत्रवत् काम करते रहे हैं और चतुर शिक्षित लोग उनके परिश्रम के फल का मुख्य अंश का उपभोग स्वयं करते रहे हैं। पर अब समय बदल गया। निम्न वर्ग वाले इस विषय में जागृत हो रहे हैं और इसके प्रति एक साथ मिलकर विरोध कर रहे हैं। उच्चवर्ग वाले अब आगे उन्हें दबाकर नहीं रख सकते, चाहे वे जितना प्रयत्न इसके लिये करें। उच्चवर्ग वालों की भलाई अब निम्न वर्ग वालों को उनके समुचित हक के प्राप्त करने में सहायक बनने में ही है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि जनसमूह में शिक्षा का प्रसार करने के कार्य में लग जाओ। उन्हें बता दो और समझा दो कि, 'तुम हमारे भाई हो, हमारे अंगों के ही अंश-प्रत्यंश हो।' अगर वे तुमसे इतनी सहानुभूति पा जायँगे तो उनका कार्य करने का उत्साह सौगुना बढ़ जायगा।

बड़ी सफलता पाने के लिये तीन बातें आवश्यक हैं। प्रथम—हृदय से अनुभव करो। बुद्धि या तर्क में क्या है? वे तो कुछ कदम चलकर ठहर जाते हैं। पर हृदय के द्वारा अन्तःस्फूर्ति उत्पन्न होती

है। प्रेम असम्भव को भी सम्भव बना देता है। इसलिये मेरे भावी देशभक्तो! अनुभव करो। क्या तुम्हें कुछ अनुभव होता है? क्या तुम्हें यह अनुभव होता है कि देवों और ऋषियों की करोड़ों सन्तान प्रायः पशुओं के समान हो गई हैं? क्या तुम्हें यह अनुभव होता है कि करोड़ों आज भूखों मर रहे हैं और करोड़ों जमाने से भूखों मरते आये हैं? क्या तुम्हें यह अनुभव होता है कि अज्ञान ने इस भूमि को काले बादल के समान ढँक लिया है? क्या यह जानकर तुम्हें बेचैनी हो रही है? क्या इससे तुम्हारी निद्रा उचट गई है? क्या यह (दुःखद) भाव तुम्हारे रक्त में समा गया है और तुम्हारी नसों में से दौड़कर तुम्हारे हृदय की धड़कन के साथ ध्वनित हो रहा है? क्या इसने तुम्हें पागल-सा बना दिया है? क्या तुम्हें विनाश के दुःख की यही एक भावना घेरे हुए है? और तुम अपने नाम, कीर्ति, स्त्री, बच्चों, सम्पत्ति और शरीरों को भी इसी के कारण भूल गये हो? क्या तुम ऐसा ही किये हो? यही सबसे पहिला कदम है।

महान् सफलता के लिये स्वयं अनुभव करना आवश्यक है।

तब तुम वैसा अनुभव करो; परन्तु अपनी शक्तियों को निरर्थक बातों में व्यय न करके इसमें से निकलने का कोई मार्ग, कोई क्रियात्मक उपाय, उनके दुःखों को दूर करने का, इस मृत्युमय जीवन से उन्हें उबारने का कोई उपाय ढूँढ़े हो क्या? तिस पर भी इतना ही पर्याप्त नहीं है। पर्वततुल्य

उपाय।

कठिनाइयों को लांघने योग्य तुम्हारा दृढ़ निश्चय है क्या ? यदि सारा संसार तुम्हारे विरुद्ध हाथ में तलवार लेकर खड़ा हो जाय, तो जो तुम ठीक समझते हो उसी के अनुसार कार्य करने का तुममें साहस है क्या ? अगर तुम्हारी स्त्रियाँ और बच्चे तुम्हारे विरुद्ध हों, यदि तुम्हारी सारी कमाई चली जाय, तुम्हारा नाम डूब जाय, तुम्हारा धन नष्ट हो जाय, तो भी तुम अपने कार्य में चिपके रहोगे क्या ? इतने पर भी तुम उसके पीछे लगे रहोगे और अपने उद्देश्य की ओर स्थिरता से बढ़ते रहोगे ? जैसे महाराजा भर्तृहरि ने कहा है, "सज्जन लोग निंदा करें या स्तुति; भाग्य-लक्ष्मी पास आ जाय या अन्यत्र चाहे जहाँ चली जाय; चाहे मृत्यु आज ही आ जाय या सैकड़ों वर्षों के पश्चात् आए; जो मनुष्य सत्य के मार्ग से रंचभर भी नहीं डिगता, वही यथार्थ में धीर पुरुष है।"* तुममें वह धैर्य, वह दृढ़ता है क्या ? तुममें यदि ये तीन बातें हैं तो तुममें से प्रत्येक, चमत्कार कर सकता है।

दृढ़ लगन।

आइये, हम प्रार्थना करें—"दयामय ज्योतिर्मय, हमें आगे ले चलो।" अंधकार में से किरण प्रकट होगी और हमें मार्ग में आगे बढ़ने के लिये हाथ सामने फैला दिया

कर्म ही पूजा है।

* निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथात् प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

जायगा। हममें से प्रत्येक, दिन और रात उन करोड़ों पददलित भारतीयों के लिये प्रार्थना करें, जो गरीबी, पुरोहित-पेशावालों और अत्याचारों के द्वारा जकड़े हुए हैं। उन्हीं के लिये दिनरात प्रार्थना करो। मैं उच्च और धनिकों की अपेक्षा उनको उपदेश देने की अधिक चिन्ता करता हूँ। मैं दार्शनिक नहीं हूँ, तत्ववेत्ता नहीं हूँ और कोई संत भी नहीं हूँ। परन्तु मैं दरिद्र हूँ और दरिद्रों पर प्यार करता हूँ। दरिद्रता और अज्ञान के गर्त में सदा के लिये डूबे हुए उन बीस करोड़ नर-नारियों के दुःखों को कौन अनुभव करता है? जो इनके दुःखों का अनुभव करता है उसे मैं महात्मा कहूँगा। उनके दुःखों का कौन अनुभव करता है? वे प्रकाश या शिक्षा नहीं पा सकते। उन्हें प्रकाश कौन देगा—उनके पास जाकर शिक्षा देने के लिये द्वार द्वार कौन भटकेगा? उन्हीं लोगों को तुम अपना ईश्वर बनाओ—उन्हीं की चिन्ता करो, उन्हीं के लिये काम करो और उन्हीं के लिये सतत प्रार्थना करो—और ईश्वर तुम्हें मार्ग दिखाएगा।

हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

१-३. श्रीरामकृष्णवचनामृत—तीन भागों में—अनु. पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला', प्रथम भाग (तृतीय संस्करण)—मूल्य ६); द्वितीय भाग—मूल्य ६); तृतीय भाग—मूल्य ७॥)

४-५. श्रीरामकृष्णलीलामृत—(विस्तृत जीवनी)—(तृतीय संस्करण)—दो भागों मे, प्रत्येक भाग का मूल्य ५)

६. विवेकानन्द-चरित—(विस्तृत जीवनी) सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, मूल्य ६)

७. विवेकानन्दजी के संग में—(वार्तालाप)—शिष्य शरच्चन्द्र, द्वि. सं. मूल्य ५।)

८. परमार्थ प्रसंग—स्वामी विरजानन्द, (आर्ट पेपर पर छपी हुई) कपड़े की जिल्द, मूल्य ३।॥) कार्डबोर्ड की जिल्द, मूल्य ३।)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

९. भारत में विवेकानन्द	५)	१९. आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग [तृ.सं.]	१।)
१०. ज्ञानयोग [प्र.सं.]	३)	२०. परिव्राजक [च. सं.]	१।)
११. देववाणी [प्र.सं.]	२=)	२१. प्राच्य और प्राश्चात्य [च.सं.]	१।)
१२. पत्रावली [प्रथम भाग] [प्र सं.]	२=)	२२. महापुरुषों की जीवनगाथायें [प्र.सं.]	१।)
१३. पत्रावली [द्वितीय भाग] [प्र.सं.]	२=)	२३. राजयोग (प्र.सं.)	१=)
१४. धर्मविज्ञान [द्वि.सं.]	१॥=)	२४. स्वाधीन भारत! जय हो! [प्र. सं.]	१=)
१५. कर्मयोग [द्वि.सं.]	१॥=)	२५. धर्मरहस्य [द्वि.सं.]	१)
१६. हिन्दू धर्म [द्वि.सं.]	१॥)	२६. भारतीय नारी [द्वि.सं.]	॥।)
१७. प्रेमयोग [तृ.सं.]	१।=)		
१८. भक्तियोग [तृ.सं.]	१।=)		

२७. शिकागो-वक्तृता [प्र.सं.] ॥=)
२८. हिन्दू धर्म के पक्ष में [द्वि.सं.] ॥=)
२९. मेरे गुरुदेव [च.सं.] ॥=)
३०. कवितावली [प्र.सं.] ॥=)
३१. भगवान रामकृष्ण धर्म तथा संघ [द्वि.सं.] ॥=
३२. शक्तिदायी विचार [प्र.सं.] ॥=)
३३. वर्तमान भारत [तृ.सं.] ॥)
३४. मेरा जीवन तथा ध्येय [द्वि.सं.] ॥)
३५. पवहारी बाबा [द्वि. सं.] ॥)
३६. मरणोत्तर जीवन [द्वि.सं.] ॥)
३७. मन की शक्तियाँ तथा जीवनगठन की साधनायें [प्र.सं.] ॥)
३८. सरल राजयोग [प्र.सं.] ॥)
३९. मेरी समरनीति [प्र.सं.] ।=)
४०. ईशदूत ईसा [प्र.सं.] ।=)
४१. विवेकानन्दजी से वार्तालाप [प्र.सं.] १।=)
४२. विवेकानन्दजी की कथायें [प्र.सं.] १।)
४३. श्रीरामकृष्ण उपदेश [प्र.सं.] ॥=)
४४. वेदान्त-सिद्धान्त और व्यवहार —स्वामी शारदानन्द, [प्र.सं.] ।=)

मराठी विभाग

१-२. श्रीरामकृष्ण-चरित्र—प्रथम भाग (तिसरी आवृत्ति) ४।
द्वितीय भाग (दुसरी आवृत्ति) ४।=
३. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत—(प्रथम आवृत्ति) ५॥
४. श्रीरामकृष्ण-बोधसुधा—(तिसरी आवृत्ति) ॥=
५. शिकागो व्याख्यानें—(दुसरी आवृत्ति)—स्वामी विवेकानंद ॥=
६. माझे गुरुदेव (दुसरी आवृत्ति)—स्वामी विवेकानंद ॥=
७. हिंदु-धर्माचें नवजागरण—स्वामी विवेकानंद ॥-
८. पवहारी बाबा—स्वामी विवेकानंद ॥
९. कर्मयोग—स्वामी विवेकानंद १॥=
१०. शिक्षण—स्वामी विवेकानंद ॥-
११. साधु नागमहाशय चरित्र (भगवान् श्रीरामकृष्णांचे सुप्रसिद्ध शिष्य) (दुसरी आवृत्ति) २ रु.

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर-१, म. प्र.

मूल्य १० आ.